ले०

जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

कलकत्ता

१८६६.

। ॐ नमः शिवाय; ।

बसन्त मालती

उपन्यास ।

प्रथम परिच्छेद ।

"प्रेम पयोनिधी में धँसि कै
हँसि कै काढ़िवो हँसी खेल नहीं है।"

अमावस की पड़िवा, रात प्रायः दो पहर, आकाश घनघोर घटा से आच्छन्न और वायु बड़े वेग से बह रही है। हवा की सनसनाहट के सिवा और कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता है। बादल भी गरज २ कर अपनी तरज दिखा रहा है। लीजिये बून्दें भी टपाटप पड़ने लगीं। ऐसे भयानक समय में एक युवा जो देखने में बड़ा साहसी और सुन्दर मालूम पड़ता है और जिसकी उमर लग भग बीस या बाईस वर्ष की होगी, एक बड़े लम्बे चौड़े मैदान में खड़ा इधर उधर देख रहा है। दो चार कदम आगे बढ़ता है

पर फिर ठहर जाता है। इसकी चंचलता कहे देती है कि यह राह भूल गया है। वह ठहर कर सोचने लगा "किधर जायं ! क्या करें ! राह तो सूझती ही नहीं है। इस पानी ने तो और भी जान पानी २ कर दिया है। उस राज कुमारी ने सन्ध्या को पहुंचने के लिये लिखा था लेकिन रात दो पहर होगई पहुंचने की नौबत अभी तक आई नहीं। जितनी मैंने जल्दी की उतनी ही देरी हो गई। जानबूझ कर मैं ने घोड़े की जान ली। न उस नाले को घोड़ा समेत लांघता न घोड़ा मरता। खैर जो हुआ अच्छा ही हुआ अब जाऊं किस ओर? हाथोंहाथ सूझता नहीं है वह बेचारी वहां पहुंच कर न जाने क्या २ सोचती होगी? मेरे लिये बैठी होगी या मुझे झूठा समझ कहीं चली गई होगी? चली गई हो तो अच्छा है नहीं तो कहीं उस ने विष खालिया तो मुश्किल ही है क्योंकि उसने लिखा था "आप पधारिये नहीं तो मैं विष खाऊंगी या योगिन होकर निकल जाऊंगी। परमेश्वर न करे कि वह ऐसा करे॥

यह सब वह सोचही रहा था कि अकस्मात उसे

उत्तर की ओर लग भग दो मील की दूरी पर एक प्रकाश दिखलाई पड़ा। प्रकाश को देखतेही वह बड़ाप्रसन्न हुआ और यह बुदबुदाता हुआ उसी ओर जिधर वह प्रकाश दिखलाई पड़ाथा तेज़ी से चलपड़ा "व्यर्थ ही मैं इधर उधर भटकता फिरा यही तो ठीक राह है। हाय! व्यर्थ इतनी देर होगई। सब बना बनाया खेल बिगड़ गया। देखें प्यारी से भेंट होती है या नहीं। परमात्मा! अब तेरा ही भरोसा है"॥

पानी कहता था आज छोड़ कल बरसैंगे ही नहीं, रास्ते में कीच की इतनी अधिकता थी कि नीच मीच की याद आती थी और अन्धकार का तो पारावारही न था तथापि वह युवा लम्बे लम्बे डग से उस प्रकाश की तरफ चलाही जाता था। बीच बीच में बिजली उस बेचारे की सहायता करती जाती थी॥

इस प्रकार जाते २ उस प्रकाश के पास जा पहुंचा जिसे देख वह चला था। वहां पहुंच कर उसने देखा कि वह प्रकाश एक प्रदीप का है जो शिव-

मन्दिर में बल रहा है परन्तु वहां उस शिव लिङ्ग को छोड़ और कोई भी नहीं है ॥

यह देख युवा बहुत ही कातर हुआ और बोला "क्या यहीं प्यारी मालती ने मुझे बुलाया था या मैं भूल कर यहां तक चला आया ? (कुछ ठहर कर) "नहीं यहां ही बुला या था, यह वही स्थान और वही शिव मन्दिर है जिस के बारे में राज कुमारी ने लिखा था। तब प्यारी कहां ? वह क्या मुझे झूठा समझ कर लौट गई ! लौटेगीतो नहीं क्योंकि उस ने तो विष खाने या योगिन बन जाने को लिखा था"। इतने में इसकी दृष्टि एक लपेटे हुए कागज़ के टुकड़े पर पड़ी जो वहां ही एक कोने में पड़ा था। चट इसने उस टुकड़े को उठाया और ध्यान से निहार कर कहा "बेशक यह मालती के अक्षर हैं" ॥

इतना कह युवा ने उस पुर्जे को पढ़ना आरम्भ किया ॥

द्वीतीय परिच्छेद ।

"बिधि रुठे तूठे कवन, को करि सकै सहाय ।
बनदव भय जलगत नलिन, तहँ हिमदैत जराय" ॥

दोपहर का समय है। प्रचण्ड मार्तण्ड अपनी प्रखरतर किरणों से भूमण्डल को तपा रहा है । गरम गरम वायु नरम २ झोंके मार रही है। तमाम सन्नाटा है। पशुगण गर्मी से बेचैन हो हांफते और जीभ निकाले इधर से उधर पानी की खोज में घूम रहे हैं ॥

ऐसे समय में किउली नदी के दाहिने तट पर एक परम सुन्दरी युवती जिसकी अवस्था १६ वर्ष की होगी, बायें हाथ पर गाल रक्खे गर्दन झुकाये बैठी है और घोर चिन्ता में निमग्न है ॥

मनुष्य का मन भावना की खान है । जितना भाव है भावना भी उतनीही है। भावना की आदि नहीं, अन्त नहीं, शेष नहीं, सीमा नहीं है। एकके बाद दूसरी फिर तीसरी चिन्ता ने आकर चिन्ता पूर्ण हृदय को अधिकृत कर लिया । मनुष्यमण !

सावधान, तुम्हारे हृदय में दुश्चिन्ता ने यदि एक बार भी अधिकार जमा लिया तो फिर उसे दूर करना बड़ाही कठिन हो जायगा किन्तु हाय! कितने आदमी इस चिन्ताचक्र से बचे हुए हैं?

पाठक गण! देखिये, आपके सामने बैठी हुई इस सुन्दर अधखुली कली में चिन्ता कीट धुस गया है जिसने इसके कोमल हृदय को टुकड़े २ कर दिया है। इस नदी तीर पर इसके चिन्ता मौतको रोकने वाला कोई नहीं है। इस नदी में जैसे एकके बाद दूसरी तरंग उठती है और फिर उसी में विलीनहो जाती है ठीक वैसीही चिन्ता की तरंगें इस युवती के हृदय से भी उठती हैं और गिरती हैं। विषाद पूर्ण नेत्रों से आंसू गिर रहे हैं॥

पाठक गण! यह चिन्तित, अकेली युवती कौन है जो इस कड़कड़ाती धूप में किछली घाट पर बैठी है?

यह गोपाल पुर के महाराज रणधीरसिंह की एकलौती लड़की मालती है। हमारे पाठक यहां पूछ सकते हैं कि राजकुमारी की यह दशा क्यों? तो इसका यही जवाब हो सकता है "धर्म्म"

आज यह राज कुमारी अपने घर द्वार माता पिता को छोड़ कर अपने पातिव्रत धर्म्म को बचानेही के लिये बाहर हुई है। हिन्दुओं के लिये ऐसी कोई बातही नहीं है जो धर्म्मरक्षा के लिये न करें। मालती भी हिन्दू बाला है धर्म्म को जानती है इसी से आज यह अपनी कोमल देह को जिसमें कभी भी कष्ट की आंच नहीं लगी थी, दो पहर की कड़कड़ाती धूप मे तपा रही है। मालती नदी के उस पार जाने के निमित्त नौका की आशा में बैठी है ॥

साढ़ेचार बज गये लेकिन अभी तक नौका उसपार से आई नहीं। मल्लाहों के आने का समय अब भी नहीं हुआ है। प्रचण्ड रौद्रका तेज घटे बिना, अग्नि तुल्य सन्तप्त भूमि के शीतल हुए बिना किसको सामर्थ है जो घर से बाहर निकले ?

ऐसे समय में दो सुन्दरी युवतियां किउली घाट पर दिखलाई पड़ीं। इन दोनों के संग कोई पुरुष नहीं है और न कुछ मालटाल है। दोनों को देखने से मालूम पड़ता है कि ये दोनों अच्छे कुल की और धनी मनुष्य की कन्या हैं परन्तु इनका

हाव भाव कटाक्ष, चालचलन, ठाठबाठ कहे देता है कि ये निर्लज्ज और कुलभ्रष्टा हैं। दोनों के अंग में अच्छे २ बहुमूल्य भूषण हैं जो उनके सौन्दर्य्य की शोभा को दूनी कर रहे हैं। दोनों मुस्कुराती, अटखेलियां करती आगे बढ़ी आ रही हैं। इन दोनों में जो बड़ी है उसकी उमर शायद पचीस वर्षकी हो परन्तु छोटी की तो अठारह से कदापि ज्यादे नहीं है। दोनों ही गोरी और सुन्दर हैं। घाट पर पहुंचतेही बड़ी ने कहा सुन्दर! मैंने जो कहा था वही हुआ न, देखो यहां एक भी नाव अभी नहीं है॥

सुन्दर०। हर्जही क्या है जीजी! उन निगोड़े दिहातियों के पास से तो इस नदी के तीर पर बैठने ही में आनन्द है॥

इतना कहते २ उन दोनों की दृष्टि मालती पर जा पड़ी। सुन्दर ने फिर कहा "जीजी! वह देखो एक औरत बैठी है न जाने कौन है? चलो हमलोग उसी के पास चलें। मालूम होता है वह भी हमीं लोगों की तरह काण्ड रच कर घर से निकल भागी है"॥

यौंहीं बातें करतीं वे दोनों मालती की ओर चली। दो सुन्दर युवतियों को अकेली आती देख कर मालती ने सोचा "क्या यह भी मेरी जैसी दुखिया हैं जो अकेली घरसे निकसी हैं?"॥

अहा! मनुष्य का चरित्र कैसा अद्भुत, अगम्य और गूढ़ है। इस संसार में जिसकी जैसी प्रकृति है, जिसका जैसा स्वभाव है वह वैसाही सोचता और बिचारता है। इसी लिये हमारे बिचक्षण शास्त्र कारों ने कहा है "आत्मवत् मन्यते जगत्॥

युगुल युवती मराली चाल चलती हाथों को हिलाती और आनन्द के सोते में गोते लगाती हमारी दुःखिनी वियोगिनी मालती की निकटवर्त्तिनी हुईं सुन्दर ने मालती से पूछा "आप यहां क्यों बैठी हैं? क्या उसपार जायंगी?" सुन्दर भी कुछ कम बोलने वाली न थी भला वह चुप क्यों रहने लगी? उसने भी पूछही डाला "हम लोग तो जामुई स्टेशन से गाड़ी पर चढ़ेंगी क्या आप भी रेल से जांयगी?"

मालती इस प्रकार की बाचालता देख गुम्म सी हो एक टक उन की ओर निहारती रह गई। कुछ

देर बाद बोली " हां, मैं भी उस पार जाऊंगी पर रेल पर नहीं" ।

सुन्दर ने आकर झट मालती का हाथ पकड़ लिया जैसे बड़ी पुरानी जानी पहिचानी हों और कहा "चलो अच्छा हुआ हम तीनों साथ ही पार उतरेंगीं" ।

इस प्रकार जब इन लोगों की परस्पर बात चीत हो ही रही थी कि एक नाव जिस पर दो मल्लाह थे उस पार से आपहुंची । एक मल्लाह ने कहा "पार जाय वाला चल आवो" । इतना कह मल्लाहों ने सप्तम स्वर से गाना आरम्भ किया। मल्लाह की बात सुन तीनों औरतें नाव पर जा बैठीं और नाव भी चल निकली । मल्लाहों ने गाया:—

"आवे छथीं एगो वुतरु मटुक धेलें पीतामर के भगवा पेन्हलें हाथ में बंसी लेलैं आवे छथीं" ॥

पाठक गण ! आप की ये दोनों शौकीन औरतें यह गाना सुन कर खिलखिला उठीं किन्तु हमारी मालती नाव के एक कोने में सिरनीचा किये अन-मनीसी चुपचाप बैठी रही ।

नाव प्रायः बीच धार में पहुंच गई है। गगन मण्डल भी घन घोर घटा से घिर गया है। देखते २ सूर्य्यदेव अन्तर्हित होगये और अन्धकार ने एक दम अपना अमल दखल जमा लिया। ग्रीष्मऋतु में प्रायः जैसा तूफान आता है अभी भी ठीक वैसेही तूफान के आने का सामान आसमान पर दिखलाई पड़ा। वर्षा ऋतु में, किउली का जैसा कुछ बेग बढ़ जाता है यह उस के निकट बर्त्ती ही लोग जानते हैं। इस नदी की ये दशा है कि अभी देखिये तो चुल्लूभर पानी नहीं पर थोड़ी ही देर में नदी लबालब भर जाती है उस समय फिर किसकी सामर्थ है जो नदी में नाव चलावे। इसी से इस नदी को लोग पगली नदी भी कहते हैं। यद्यपि अभी नदी की वह भयानक मूर्त्ति नहीं है पर शान्ति भी नहीं है क्योंकि अभी थोड़ी देर हुई कि इसने अपने बिकट रूप को धारण किया था। मल्लाहों ने बिपद सन्निहित समझ कर प्राणपन से डांड़ खेवना आरम्भ किया पर कृत कार्य्यनहीं हुए। उन लोगों ने चाहा था कि तूफान पहुंचने के पहिलेही नाव को

किनारे लगा दें पर शोक ! क्षण भर में बड़े बेग से आंधी पहुंच ही गई। अब क्या था लगा नदी का जल खलबलाने। नाव भी उछल कूद करने लगी। इस कारोबार को देख सुन्दर सुन्दर के मुंह पर हवाई छूटने लगी, छाती धड़कने लगी, यमदूत सामने दांत निकाले खड़े मालूम पड़ने लगे, न जाने क्षण भर पहिले वह हँसी जो उनके मुख चन्द्र पर दिखलाई पड़ती थी कहां भाग गई ! ऐसी सुन्दर देह जिसे सैकड़ों मन साबुन से मल मल कर धोया था नदी में डूब जायगी, हाय ! इस जवानी का यही परिणाम होयगा। हाय मन के सुख सब मन ही में बिलीन हो जायंगे ! हाय गुनाह बेलज्जत बदनामी भी हुई लोक परलोक दोनों बिगड़ा पर मन की आस पूरी न हुई ! ऐसा जानती तो घर से कभी न निकलती, इत्यादि २ चिन्ताओं ने उन के चित्त को चंचल कर दिया।

सुन्दर ने कहा "जीजी ! अब क्या होगा ? नाव तो डगमगा रही है—अब जान बचनी मुश्किल है।" सुन्दर ने जवाब दिया "घबराती क्यों है ईश्वर

चाहैगा तो सब अच्छा होगा आ मेरी गोद में बैठ जा" सुन्दर उठी और सुन्दर के सामने जा बैठी ॥

एक मल्लाह बोला "तोहरा अरकें ऐसें २ हिल भे डोलभे तो एको काम नै बनतो" (मालती की ओर बतला कर) देखो ऊ कैसन चुपचाप बैठल है। तोहरो अरकैं ओयसें बैठो (दूसेरे मल्लाह से) "टोड़िया ! बोल बाबा † पतनेसर नाथ के जय" इतना कह उन लोगों ने फिर साहस पूर्व्वक डांड़ चलाना आरम्भ किया ॥

मालती ने सोचा कि मैं तो प्राण हथेली पर रख कर घर से निकलीही हूं, प्राण गये तो इस

† किउली नदी के किनारे मलेपुर से एक मील दक्खिन और जामुई से चार मील उत्तर पहाड़ पर पतनेश्वरनाथ नाम का एक शिवलिङ्ग है जो बड़े पुराने समय का है। पहिले यह नाम मुझे निरर्थ मालूम पड़ा पर पीछे मैंने यह अनुभव किया कि पहाड़ के पासही एक छोटा सा गांव है जिसका नाम "पतौना" है। पतौना ईश्वर पतौनेश्वर। शायद इसी का अपभ्रंस पतनेसर हो ॥

का डर क्या क्योंकि यह जीवन तो अनित्य है। जब प्यारे बसन्तही न मिले तो अब जीना कैसा! फिर वह हाथ जोड़ कर कायमनोवाक्य से परमात्मा के ध्यान में मग्न हुई। देखते २ नौका भी जलमग्न होगई। नौका, मल्लाह और तीनों औरतें जलमें विलीन होगईं। मालती का घोर वियोगानल नदी के शीतल जल से निर्व्वापित होगया॥

॥ तृतीय परिच्छेद ॥

"नहिं इलाज देख्यो सुनी, जासों मिटत सुभाव।
मधु पुटकोटिक देत तउ, विष न तजत विष भाव॥

समय तीसरे पहर का है। निदाघ भास्कर भगवान की भासा (किरण) ह्रास होगई है तथापि शीतल सुखदायी समीर का अभावही है। काशी के मकान प्रायः पत्थरही के बने हैं, दिन भर सूर्य्य देवने अग्नि की बर्षा की है अतएव गृहसमुदाय भी उष्ण होगये हैं अभी तक शीतल होने की वारी नहीं आई है॥

अगस्त कुन्डा (काशी का मुहल्ला विशेष) के एक सामान्य दो तल्ला मकान के बरन्डा पर जिसपर एक सुन्दर सूती गालीचा बिछा हुआ है तीन स्त्रियां बैठी हैं जो शायद कुछ बात चीत कर रही हैं। उन तीनों औरतों में से जो सब से बड़ी है उसकी अवस्था शायद अड़तीस वर्ष की है, देखने में हृष्ट पुष्ट, गोरी और सुन्दर है। एक खूब बारीक मलमल की साड़ी पहिने, गले में तुलशी की माला और बल्लभकुली कन्ठी पड़ी है। गहना में केवल हाथों में दो डाइमस

काटा सोने के कड़े हैं। पान से होंठ दोनो लाल हैं। यह सधवा है या बिधवा, कुलबती वा कुलटा, संयोगिनी वा बियोगिनी इसका निश्चय करना जरा टेढ़ी खीर है। खैर, आगे चलके सब मालूम हो जायगा। शेष दोनों औरतों के विशेष परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि पाठक गण इन्हें खूब पहिचानते हैं। ये वेही सुन्दर मुन्दर हैं जिनसे एक बार किउली घाट पर भेट हो चुकी है। हमारे पाठक अवश्यही यह सुनकर चकित हुए होंगे कि काशी में सुन्दर मुन्दर कहां। वे तो वहांही नदी में डूब गई थीं। घबाड़इये मत, आइये जरा इनकी बातें सुनिये तो सब भेद आपही खुल जायगा॥

बड़ी ने जिसका नाम सुखदेई था कहा "तुम दोनों के प्रान बचगये यही बहुत है बाबा विश्वनाथ ने ही तुम्हारे प्रान बचाए"॥

सुन्दर०। बिस्सनाथ ने तो बचाया नहीं पर हां वह बिचारे संयोग से मिलगये जिनको बदौलत जान अलबत्ते बचगई। क्यों जीजी! जैसे तो सुन्दर वैसेही बलवान और फुरतीले भी थे॥

सुख०। सो जो हो, तुम लोगों की जान बचगई हमारे लिये यही बहुत है। अच्छा, यह तो बताओ तुम लोग कौन उपाय से यहां आईं? मैं जो बता आई थी उसी उपाय से या दूसरे से?

सुन्दर०। बुआजी। जब तुम्हारे बताये उपाय से काम न चला तब मैंने एक नयाही ढंग निकाला॥

सुख०। वह क्या?

सुन्दर०। बुआजी तुम जानतीही हो कि मेरे स्वामीजी जैसे सुन्दर हैं—वह नाटा कद छोटी २ आखें याद करतेही ओकाई आती है। जब आप पंचरंगी बानात का बटुआ कमर से लटकाये, तम्बाकू मुंह में भरे घर में आते हैं तो वह छवि देखतेही बनती है। और उसकी मां कमबख्त तो शैतान की नानी ही है जब देखो तब मुझसे लड़ाईहै करती है॥

सुख०। अरे यह सब तो मैं जानतीही हूं—फिर हुआ क्या?

सुन्दर०। हुआ क्या सो सुनो न। एक दिन मैं शाम को नरेश बाबू से कुछ बातें कर रही थी इतने में आप वहां आ पहुंचे सो लगी खफा होने और

कहने कि तू ऐसी है वैसी है। भला मुझको यह सब बरदाश्त कहां? और मैं तो पहिलेही से मौका ढूंढ़ती थी, बस मैं भी खूब बिगड़ी। वह एक कहता तो मैं सौ सुनाती। अन्त में मैंने कहा "अब जो तेरे घर में मैं पानी पीऊं तो असल बाप की नहीं"। कसम खाकर मैं अपनी एक पड़ोसी के घर चली गई और चार पांच दिन वहांही रही। टोले महल्ले वाले ने बहुत समझाया पर मैंने एक न मानी। आखिर वह चन्डूल (पति) भी पैर पड़ने आया पर मैं क्यों मानने लगी थी? एक दिन मैंने सुन्दर को अपने जी का हाल कह सुनाया यह भी राज़ी होगई बस एक दिन आधी रात को हम दोनों चुपचाप निकल भागीं॥

सुख०। तुमने तो अच्छा किया पर सुन्दर बीबी का हाल तो कहो॥

सुन्दर०। इनका हाल कुछ न पूछो, यह मुझे भी जीत गईं। इसने तो आने के दिन उस बेचारे का (अपने पति का) कामही तमाम कर दिया॥

सुख०। यह इसने बुरा किया!!! आखिर तो लड़की ही ठहरी न॥

सुन्दर०। तब क्या करती? न रहै बांस न बजे बाँसुरी। रोज़ का खटकाही मिटा। कौन जानता है कि मैं यहां हूं और फिर जानही कर कोई मेरा क्या कर लेगा? मैं तो जरा भी नहीं डरती हूं। अगर डरतीही तो ऐसा क्यों करती? गुलाब के फूल तोड़ने में हाथों में कांटे चुभतेही हैं "मधु निकालने में मधु मक्खियां डंक मारतीही हैं तो," इस से क्या लोग इन कामों को छोड़ देते हैं? बुआजी! जिस काम में दुःख होता है वही सुख देनेहारा भी है। दुःख भोगे बिना सुख नहीं मिलता है॥

सुख०। बच्चा! मुझे यह सब क्या समझाती है मैं सब जानती हूं "यही खेलना खेलते मेरे धौले आवेंगे" न जानें कितने को राह बता के छोड़ दिये है। मेरे कहने का मतलब यह कि मुरगी खाना लेकिन पर नहीं खोंसना। अगर तुम्हारीही ऐसी मेरी बुद्धि होती तो मैं के दिन निबहती? तुम्हारे फुफाजी को मरे आज बीसों वर्ष हुए लेकिन किसकी मजाल है जो मेरी ओर उंगली उठावे। जिस दिन से मैं बिधवा हुई उसी दिन से काशी बास करती हूं और चैन से

दिन काटती हूं। खैर इन बातों से क्या मतलब जो होना था सो होगया अब उसकी चिन्ता क्या ? होशियारी से रहो और सुख से दिन बिताओ यही मेरी इच्छा है ॥

मुन्दर० । बुआजी ! भला यहां क्या सुख है अगर कलकत्ते चल कर रहो तो अलबत्ते सुख हो । यह ठहरा तीर्थ स्थान, यह तो अन्तकाल के लये है सुख के लिये थोड़े ही है ॥

सुख० । इसी से कहती हूं तू अभी लड़की है कुछ समझती नहीं, काशी से बढ़ कर क्या और कोई सुख की ...ह है? दुनियां के तमाम ऐशोइशरत यहां भरे हैं। ... बड़े आनन्द की जगह है खासकर हमारी जैसी ...तों के लिये जो दोनों कुल बचा कर काम करती हैं, ... वाले और बाहर वाले जानते हैं कि मैं काशी वास करती हूं लेकिन मैं जो कुछ करती हूं मैंही जानती हूं। यह सब अभी समझ में नहीं आवैगा कुछ दिन रहो सहो तब सब समझोगी। अच्छा, चलो अब जरूरी कामों से निश्चिन्त होलें क्योंकि विश्वनाथ की आरती में जाना है॥

यह कह कर सुखदेई उठी और उसके साथ वे दोनों औरतें भी उठ कर भीतर चली गईं ॥

॥ चतुर्थ परिच्छेद ॥

"होनी अनहोनी कीन्हो सबही तिहारे हेत
तीज प्रान प्यारे भेंट तुमसे भई नहीं"।

आधी रात का समय है, निशानाथ उड़गण परिवारों के सहित दूरस्थित वसुन्धरा पर अमृत वृष्टि कर रहे हैं। शीतल सुगन्ध मन्द बायु बह रही है। एक सुन्दर और ऊंचे भवन के पिछवाड़े वाली दीवार पर चन्द्रिका पड़ने से साफ मालूम होता है कि पांच बड़ी २ खिड़कियां हैं और बीच वाली खिड़की में दो स्त्रियां बैठी परस्पर बात कर रहीं हैं॥

इन दोनों में से एक की अवस्था कदाचित् सोलह वर्ष की होगी। सुन्दर मुखमण्डल देखने से चन्द्रमा का धोखा होता है। दर्वाजे के सहारे बैठी है और अपना दाहिना हाथ बाहर निकाले है जिसमें बहुमूल्य सुन्दर काली चूड़ियां और हीरे की अंगूठियां पड़ी हुई हैं। ऊंची २ सांस लेती और अपने युगल नैनों से गंगा यमुना की धार बहाती अपने सम्मुखासीन स्त्री से बार्तालाप कर रही है जो भूषण बसन

के अन्तर से इसकी प्यारी सखी मालूम होती है। कुछ देर तक सन्नाटा रहने के पश्चात् उस सुन्दरी ने अपनी प्यारी सखी को सम्बोधन कर कहा:—

"सखी चम्पा! अब क्या होगा?"

चम्पा०। प्यारी मालती! तुमतो व्यर्थही हठ करतीहो। अगर अपने पिता की आज्ञा मानलो तो कोई हर्ज नहीं॥

माल०। नहीं बहिन, ऐसा तो मुझ से नहीं होगा। जो मेरा पति हो चुका भला उसे छोड़ दूसरे से कैसे व्याह करूंगी? क्या अपने को कुलटा बनाऊं?

चम्पा०। सुना है महाराज कहते हैं मैं मालती का व्याह अब बसन्त कुमार से कदापि न करूंगा क्योंकि वह एक आंख से काना है॥

माल०। सखी जो हो, अन्धा, लंगड़ा, बहरा लूला चाहे जैसा हो, अब तो वह मेरा पति होचुका। सखी! व्याह तो उसी दिन होगया जिसदिन पिता जीने नरियल और रुपया उनके यहां भेजदिया। क्या व्याह भी दो चार दफे होता है?

चम्पा०। नहीं सखी, तुम्हारा कहना बहुत ठीक

है लेकिन न जाने महाराज को क्या सूझी है जो ऐसा करते हैं ?

माल०। महाराज का इस में कोई दोष नहीं है। यह सब फसाद उसी दुर्जनसिंह मंत्री का है जो अपने पुत्र का व्याह मुझसे कराया चाहता है क्योंकि उसे तो राजगद्दी पाने की लालच है। उसी नीच ने महाराज के कान भर भर कर यह तितिम्बा खड़ा किया है॥

चम्पा०। और महाराज भी उसके ऐसे बस हैं कि उसकी बात को जराभी टाल नहीं सकते, फिर तुम क्या करोगी ?

माल०। जब ज्यादे तंग करेंगे तो घर द्वार छोड़ कर कहीं चली जाऊंगी या विष खा कर अपना प्रान दे दूंगी पर अपना धर्म न बिगाड़ूंगी॥

चम्पा०। बहिन ! अब मुझे निश्चय होगया कि तुम अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ोगी और बात भी यही है जिसके हुए उसके हुए। मैं भी अब तुम्हारे दुःख सुख की संगिन बनूंगी, जो कहो मैं करने को तैयार हूं॥

माल०। (रोकर) भला मैं क्या बताऊं ? जिसमें

मेरा धर्म्म न बिगड़े ऐसा कोई उपाय अब तुम्हीं बताओ ॥

चम्पा० । बसन्त कुमार को तो इन बातों की कुछ भी खबर न होगी ?

माल० । कुछ भी नहीं ॥

चम्पा० । तो मेरी समझ से उन्हें इस बातकी खबर दे देनी चाहिये क्योंकि उनके सिवा अब दूसरा कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता है ॥

माल० । भला वह मेरी सहायता क्यों करने लगे ? उन्हें क्या मतलब जो दूसरों के लिये कष्ट उठावेंगे ?

चम्पा० । नहीं सखी वह यह खबर पातेही तुम्हारी मदद के लिये आवेंगे, वह क्षत्री हैं शरणागत की रक्षा करने वाले हैं। तुम एक चिट्ठी लिखकर भेज दो बस काम ठीक हो जायगा ॥

माल० । बहिन ! मुझे तो लज्जा मालूम होती है भला मैं क्या कह कर चिट्ठी लिखूंगी ?

चम्पा० । इसमें लज्जा की कौनसी बात है ? किसी दूसरे को लिखती हो ? जब उनके लिये घर बार छोड़ने पर तय्यार हो तो अब लज्जा कैसी ॥

माल०। अच्छा चिट्ठी तो मैं लिखदूंगी लेकिन चिट्ठी लेजायगा कौन? क्योंकि महाराज के डरसे वहां जाना कोई मंजूर नहीं करेगा॥

चम्पा०। इसकी चिन्ता मत करो चिट्ठी मैं भेज-दूंगी तुम लिखो तो सही॥

मालती ने पत्र लिख कर चम्पा से कहा "लो सुनलो ठीक है न?

चम्पा ने कहा "पढ़ो। मालती पढ़ने लगी॥

"प्यारे बसन्त कुमार॥

मैं निर्लज्ज हूं बेशरम हूं पर क्या करूं लाचार हूं। समय बड़ा प्रबल है। आप क्षत्री हैं शरणागत की रक्षा करते हैं इस लिये मैं भी अपने को आपके चरणों में सौंपती हूं आशा है आप मेरे धर्म्म की रक्षा करेंगे। और मैं क्या लिखूं दूत से सब वृतान्त पूछ लीजियेगा। परसों सन्ध्या को आप उसी शिवमन्दिर में जो नगर के बाहर है पधारिये नहीं तो मैं विष-खाऊंगी या योगिन होकर निकल जाऊंगी। इति॥

आपकी दासी—"मालती"।

चम्पा ने "बहुत ठीक" कह कर वह पत्र ले लिया

और लिफाफे में बन्द कर उसी समय घर जाकर अपने एक विश्वासी भृत्य के द्वारा वह पत्र वसन्त कुमार के पास भेज दिया चलती समय चम्पा ने भृत्य को कुछ समझा दिया वह भी "बहुत अच्छा" कह बसन्त कुमार की तरफ रवाना हुआ ॥

समयानुसार वह भृत्य बसन्त कुमार के यहां से यह उत्तर लेकर लौटा कि वह उस दिन वहां अवश्य ही पहुंच जांयँगे ॥

देखते२ दो दिन बीत गये। तीसरे दिन सन्ध्या के कुछ पहिले मालती ने कहा "बहिन ! समय तो आ गया अब क्या करना चाहिये ? मैं तो उन्हें पहचानती भी नहीं हूं कैसे जानूंगी कि यही बसन्त कुमार हैं ?" ॥

चम्पा० । क्या उनकी तस्वीर भी तुमने नहीं देखी है ? उनकी तस्वीर तो यहां आई थी ?

माल० । नहीं मंत्री दुर्जनसिंह के मारे मुझे कहां मिली । उसने कह दिया था कि तस्वीर खो-गई है ॥

चम्पा० । ठीक है, वह बड़ा दुष्ट है । उसके जी का हाल तो मुझे मालूम है वह तस्वीर उसने अपनी

लड़की को दिया है जिसका व्याह बसन्त कुमार से वह किया चाहता है। मैं जाती हूं और तस्वीर उसकी बेटी से मांग लाती हूं।

चम्पा यह कह चली गई और थोड़ी देर में तस्वीर लेकर लौट आई। मालती ने प्रसन्न चित्त से तस्वीर देख कर कहा "भला ये काने कहां हैं?" चम्पा बोली "तुम्हीं देखो, यह सब तो दुर्जनकी चालबाजी थी"॥

सन्ध्या को मालती और चम्पा शिवदर्शन को घर से चलीं। प्रति सोमवार को ये दोनों प्रायः दर्शन के लिये जाया करती थीं बल्कि यों कहना चाहिये कि महाराज की यह आज्ञा थी॥

जब ये दोनों वहां पहुंच गईं तो आनन्द से बसन्त कुमार से मिलने की आशा में शिवजी की पूजा और बन्दना करने लगीं इसी में दो घन्टे बीत गये अन्धकार ने सब प्रकार से अपना अधिकार बिस्तार संसार में प्रचार कर दिया परन्तु बसन्त कुमार का कहीं पता भी नहीं। अब इन लोगों के चित्त में नाना प्रकार के बिचार का संचार होने लगा—डर, शंका, सन्देह,

और आश्चर्य ने इन दोनों के जी में अपना २ डेरा जमा दिया। आकाश से टिमटिमाते हुए तारागण के प्रकाश ने अवकाश ले न जाने कहां निवास किया, अकस्मात् काली घटा ने अपनी छटा दिखलाई और हवा भी बड़े दबदबा से मालती को तंग करने के लिये आ पहुंची। चम्पा ने घबड़ा कर मालती से कहा "बहिन! अब क्या होगा?"

माल०। "होइहै वही जो राम रचि राखा" जान जाय या रहै मैं तो घर नहीं लौटूंगी॥

चम्पा०। बात तो यही है अब आयकर क्या लौटना! क्या सबब जो वह नहीं पहुंचे?

माल०। जरूर कोई विघ्न हुआ नहीं तो वह कदापि न रुकते॥

चम्पा०। कहीं राह तो नहीं भूल गये?

माल०। ताज्जुब क्या है॥

"अच्छा तुम यहां बैठो मैं आगे बढ़ कर देखती हूं शायद मिलजायँ" कहती हुई चम्पा उठ खड़ी हुई और दोचार डेग आगे बढ़ कर फिर लौटी और बोली "नहीं नहीं यहां मत बैठो, शायद देरी

हो जाने के कारन महाराज घबड़ा कर सिपाहियों को भेजें और वे लोग यहां पहुंच कर तुम्हें देख लें तो सब खेलही बिगड़ जायगा इसलिये उस कुंज में छिप कर बैठो जो किसी को पता भी न लगे। अच्छा तो मैं जाती हूं।" इतना कह चम्पा चली गई और मालती भी निर्दिष्ट कुंज में जा बैठी॥

इतने में बड़े जोर से आंधी पानी आया जैसा कि पाठकगण प्रथम परिच्छेद में पढ़ चुके हैं। पहरों बीत गये पर चम्पा न लौटी और न बसन्त कुमार ही आये। अब मालती की घबड़ाहट का क्या ठिकाना था? जो मालती रात के समय सैंकड़ों दास दासियों के रहते भी बाघ सिंह का चित्र देख कर डरती थी, जो मालती मखमल के बिछौने पर भी शयन करके सुखी नहीं होती थी और जो अपने माता पिता की एक मात्र अवलम्ब थी आज वही मालती इस कारी अँधियारी निशा में अकेली इस सुनसान झाड़ी में खड़ी सोच रही है "कहां जाऊं, क्या करूं, कुछ सूझता भी नहीं है—राह भी मालूम नहीं, राजकुमार क्यों नहीं आये, चम्पा कहां

चली गई?" इत्यादि विचार रही थी। अन्त में उसने मन्दिर में जाकर उस प्रदीप के प्रकाश में जो पूजा के समय इसने बाल कर रख दिया था एक पुरज़ा कोयले से लिखा और उसी जगह रख न जाने कहां सीधे उत्तर की ओर प्रस्थान किया॥

पंचम परिच्छेद ।

जैसो बन्धन प्रेम को, तैसो बंध न और ।
काठही भेदे कमल को, छेद न निकरै भौंर ॥

पाठकगण ! बहुत दिन होगये उस युवा का कुछ हाल नहीं मिला है जिसे शिव मन्दिर में एक कागज़ का टुकड़ा पढ़ते हुए छोड़ आये हैं । आइये जरा चल कर देखें तो सही उस बेचारे की क्या दशा है ?

न मालूम उस पुरजे में क्या लिखा था जिसे पढ़तेही उसके चेहरे पर उदासी झलकने लगी, आंखें डबडबा आईं । उसकी ठीक वैसीही दशा हो गई जैसे किसी आदमी की तब होती है जब किसी अपने इष्ट मित्र से मिलने की आशा में बहुत दूर से जाता है पर पहुंचने पर भेंट नहीं होती है । युवा ने ऊंची सांस लेकर कहा "सचमुच मैं बड़ा झूठा हुआ ! हाय वह बेचारी, यहां तक आई पर मैं न पहुंच सका ! वह बड़ी सच्ची थी धर्म्मात्मा थी नहीं तो उसे क्या गरज थी जो यहां तक आती और घरबार छोड़

चली जाती ! यह सब का मूल कारण तो मैंही हूं। न मुझसे उसके व्याह की बात चलती न उसे यह सब कष्ट उठाने पड़ते, उसकी सखी चम्पा भी उसे छोड़ न मालूम कहां चली गई। धिक्कार है मुझे और मेरे क्षत्रीपन को जो यहां तक पहुंच कर भी प्यारी मालती की रक्षा न कर सका। जब वह मेरे लिये अपने माता पिता राज्य सुख को छोड़ बन की भिखारिन हुई तो मैं अब किस मुंह से घर आऊंगा ? मैं भी अब यही प्रण करता हूं कि जब तक प्यारी मालती को न ढूंढ़ निकालूंगा घर न जाऊंगा"। इतना कह युवा भी न जाने किधर चला गया। अब तो पाठक समझही गये कि इस युवा का नाम बसन्त कुमार है॥

षष्टम् परिच्छेद ।

"काहू जाहु नाहिन मिटत, जो बिधी लिख्यो लिलार ।
अंकुस भय करि कुंभ कुच, भये तहां नख मार" ॥

दिन प्राय: बीतने पर है । सूर्य्यदेव अस्ताचल को जाने की इच्छा से पश्चिम की ओर सरक रहे हैं । स्वामी का असमय उपस्थित होने से उन के अनुचर वर्ग अपमानित और हतादर होते हैं अतएव प्रचण्डरौद्र जिस ने धरातल को दिनभर दग्ध किया है, दिनकर के अनुपस्थित होतेही पृथ्वी पर और ठहरने नहीं पाया, धरातल से दूरीकृत हो ऊंचे २ मकानों की छत पर, वृक्षों की शाखाओं पर, पर्वतों के शिखर पर जा डटा परन्तु प्रकृति का यह भी एक अपरिवर्त्तन शील नियम है जब किसी के दिन बुरे आते हैं तो कहीं भी उसको आश्रय नहीं मिलता है सुत्तरां रौद्र को भी उन उन स्थानों से भागना पड़ा । अन्धकार ने भी उपयुक्त समय जान धीरे २ नीचे उतर कर अधिकार जमाना आरम्भ किया ॥

आदित्य भगवान गगन मण्डल से अभी तक

अन्तर्हित नहीं हुए हैं इसी से अन्धार परिष्कार और परिछिन्न स्थानों को अधिकृत करने का साहसी नहीं होता है गुहा, गह्वर कन्दरा, लताकुंज्जों में छिप कर बैठा है अवसर पातेही एक दम सारे ब्रह्माण्ड पर अपना अधिकार जमा लेगा॥

सन्ध्या समीर भी सरलगति से संचालित होरहा है। पक्षीगण अपने कलरव के द्वारा सन्ध्यादेवी का आवाहन कर रहे हैं। लीजिये देखते २ सूर्य्य देव अन्तर्ध्यान होगये दो दो एक एक कर असंख्य ताराओं ने नभमण्डल को तोप लिया॥

इस समय एक युवती "टेक पहाड़ी" के नीचे से सिर झुकाए जा रही है। यद्यपि इसके शरीर में कोई सुन्दर गहने वा कपड़े नहीं हैं तौभी इसके अंग प्रत्यंग की कोमलता कहे देती है कि यह किसी अच्छे कुलकी है। यह अभी शृङ्गार हीन है तौभी हम कह सकते हैं कि यह परम सुन्दरी है। तपाए हुए सोने की तरह इसकी मुखकान्ति चमक रही है। क्यों पाठक! पहिचानते हैं यह युवती कौन है? यह दुःखनी मालती के सिवा और कोई नहीं है।

उस परब्रह्म जगदीश्वर की असीम अनुकम्पा से बिचारी डूबते २ बचगई। नाव के डूबने बाद एक तरंग ऐसी आई जिसने मालती को उठा कर थाह जलमें रख दिया। मालती अपने को कम पानी में जान झट किनारे पर चली आई। परन्तु उसके पास जो कुछ पथव्यय था वह सब नदी ही में रह गया। अतएव मालती अभी सब तरह से दुःखी है, कसम खाने के लिये पास में एक फूटी कौड़ी भी न रही लेकिन इसको इन बातों की जरा भी चिन्ता नहीं है। यह तो बसन्त के ध्यान में न मालूम बेसुध सी कहां जारही है।

रात होगई पर इसका चलना बन्द नहीं है यह बेसुधसी चलीही जाती है। इसी प्रकार जाते २ इसके कान में कई मनुष्यों की पदध्वनि पड़ी वह ठठक गई और चकित नयनों से इधर उधर देखने लगी तो क्या देखती है कि दस पन्द्रह मनुष्य दल-बांधे बड़े बेगसे हाथ में मशालें लिये उसीकी ओर बढ़े आते हैं। उन लोगों को इस समय इस बिजन बंन में देख मालती बायुबिताड़ित कदली पत्र बत

काँपने लगी, उसकी छाती धड़कने लगी और डर ने उसे धर दबाया। एक बार बिचार किया पीछे दौड़ कर भाग जाऊं फिर उसने सोचा यहां ही किसी झाड़ी में क्यों न छिप जाऊं जब ये लोग आगे बढ़ जायंगे मैं फिर अपनी राह लूंगी। बस इसने वैसाही किया अर्थात एक घनी झाड़ी में जा छिपी। मालती! तू अपने को इस झाड़ी मे छिपा कर निरापद समझ रही है किन्तु तेरा दुरादृष्ट तेरी बासना के बिरुद्ध कार्य्य कर रहा है।

जिन लोगों को देखकर यह डरी थी वे बड़े भयंकर नरहन्ता डाकू थे। डाकुओं का दल अग्रसर होने लगा। उन लोगों के हाथ में बड़ी २ मशालें थीं जिनकी रौशनी ने उन्हें दूरसे बतला दिया था कि वह मालती जाती है। अब वे उस स्थान पर पहुंच गये जहां मालती को उनने देखा था या जहां से मालती इन डाकुओं को देख झाड़ी मे छिप गई थी। उन लोगों ने बड़ी सावधानी से प्रत्येक लता कुंज और झाड़ी को ढूंढ़ना शुरू किया। यौंही ढूंढ़ते२ वे लोग अभागिनी, कम्पित कलेवरा, भयबिह्वला मालती

के निकट आ पहुंचे। ज्योंहीं एक मनुष्य की दृष्टि उसपर पड़ी वह बोल उठा "यह रे! यह रे!! छोड़ी एजगन में नुकलछी" ॥ इतना सुन डाकू दल उसी जगह जहां मालती खड़ी थी आ पहूंचा और देखते देखते मालती की मुश्कें बँध गईं ॥

सर्दार डाकू ने बड़े कर्कस स्वर में पूछा "ईबेरा एसकर तों कहां जायछे?" मालती ने कुछ उत्तर नहीं दिया। सरदार ने साथियों को सम्बोधन करके कहा "ई माल कहूं मालिक के देलजाय तो उ हमरा अरसें बड़ खोस हौंवथ और इनामो देथ"। और लोग बोले "हों सरकार ई मालती उन खरे जोग है"। इन लोगों की यह बात सुनकर तो मालती के प्राण सूख गये। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो चित्र सी खड़ी रह गई, बोलने की शक्ति एक दम जाती रही। उसे इस प्रकार निर्वाक, निस्पन्द और निश्चल देख सरदार ने फिर कहा "अब ठाढ़ २ सोचला बिचारला से कुछ ने होती, अबतो हमरा संग चले होती" ॥

मालती अपने को सम्हाल कर बोली "तुम लोग मुझे कहां ले चलते हो?"

सरदार० । अपना मालिक भिरा ।

मालती० । किस लिये ?

सरदार० । इनाम पावैले ॥

मालती० । इनाम कैसा ?

सरदार० । इनाम एकरे जो तोहरु संग बिआह करथूं । उनखरा एकर बड़सौख है । जहां सुन्दर मागु नजर पड़लखैं कि चट सनी बिआहे कर लै छथ। चली तोहरे बड़ सुख हो तौ और हमरो इनाम मिलत । चली जल्दी ॥

मालती के तो होश उड़ गये । उसने मन में कहा "बिधाता! क्या इसी लिये डूबते से तुमने बचाया? क्या मैं यही भोग भोगने को बची? हाय! इससे तो मर जानाही अच्छा था । हाय! जिस डरसे मैंने घर द्वार छोड़ा, मा बाप को छोड़ा वही आफत फिर मेरे सिर पर सवार है । कृपा निधान! अब मैं तेरी शरण हूं। जैसे तुमने द्रौपदी आदि भक्तों की रच्छा की, नाथ! वैसे मेरी भी रच्छा करो! नाथ अब बचाओ इन दुष्टों से" । फिर बड़ी मुलायमियत से इसने सरदार डाकू से कहा "सुनो!

तुम लोग तो डाकू हो और धन के लिये लोगों को तंग करते हो सो मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है क्यों नाहक मुझ गरीबिन को सताते हो ? छोड़ दो तुम्हें सौ गजदान का फल होगा" ॥

सरदार०। हमरा अरकैं फलके भूखल नैंछी तौं चलो बस यही हमर फल है । धन हमे खूब कमैंलों हैं—तोहरा पास जो धन छोऊ सब धन के नाना है ॥

मालती०। मैं हाथ जोड़ के कहती हूं मुझे छोड़ दो तुम मेरे भाई.........

सरदार ने क्रोध से कहा "अरे ई ऐसे नहिं मानतो ईबड़ बुधगर (बुद्धिमती) हो एकरा टांगि के लेचलो"

इतना सुन अन्य डाकू लोग जबरदस्ती (बलात) मालती को टांग कर लेहो गये वह बिचारी रोती कलपती गिड़गिड़ाती ही रह गई ॥

सप्तम परिच्छेद ।

"नारि नर विहंगानामङ्ग बन्धन वागुरा" ।

रात प्रायः शेष होगई है अन्धकार सपरिवार भागने को तय्यार है। तारागण की ज्योति फीकी पड़ चली है। गुलाब की कलियां खिलखिला कर हँसाही चाहती हैं। कमलिनी के तो आनन्द की सीमाही नहीं है क्योंकि अब वह सूर्य्यदेव का दर्शन कर प्रफुल्लित होगी। पूर्व्व दिशा ने भी पति की अवाई जान अपनी मांग लाल की। चिड़ियों ने चहचहा के कह दिया उठो सवेरा हुआ। जो बेचारे सज्जन थे उठ बैठे पर जिन्हें रात भर ऐशोइशरत वा और किसी कसरत में समय बिताना पड़ा था वे करवटें बदल चदरा तान फिर खुर्राटा लेने लगे ॥

खैर, इन लोगों को सोने में समय खोने दीजिये पाठकगण! आप मेरे साथ आइये और काशी की दशाश्वमेध घाट के एक कोने में खड़े होकर यहां की शोभा देखिये ॥

गंगाजी में और घाट पर खचाखच भीड़ है।

कोई स्नान कर रहा है, कोई सन्ध्या, कोई तर्पण, कोई सूर्य्य को अर्घही अर्पण कर रहा है और कोई कपड़े बदल दर्पण में अपना मुंह देख रहा है और खंजन मदभंजन नेत्रों में अंजन की सलाई फेर अपनी आखों की लुनाई सवाई कर रहा है। नाना स्वर से नाना भांति की स्तुति सुनाई पड़ रही है। कोई तो सूर्य्य द्वादश नाम का पाठ कर रहा है, कोई गंगाष्टकही की आवृत्ति करता है, कोई "श्मशानेष्वा क्रीड़ा: स्मरहर पिशाचा: सहचरा श्चिता भस्मालेप: स्रगपि नृकरोटी परिकर:॥ अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैव मखिलं तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि॥ मन: प्रत्यक् चित्ते सविधम वधायात्त मरुत: प्रहृष्य द्रोमाण: प्रमद सलिलोत्संगितदृश:॥ यदा लोक्यालहादं ह्रदइव निमज्या मृत मयेद धत्यंतस्तत्त्वं॥ "इत्यादि इत्यादि की रट लगाये है॥

कितने मनुष्य नहा २ कर गये और कितने अभी चलेही आते हैं इसका कुछ ठिकाना नहीं। एक झुंण्ड अभी फिर आया जिसमें से एक गाता है:—

। भैरवी खेमटा ।

"मन भावे हमें काशी की गली, विश्वनाथ पद पूजा भली। सांस सांस पर शिव दर्शन जहां सिद्ध बिराजें थली थली। भैरवकाल करत कोतवाली पाप ताप कर डारें मली। शोभा सदन मदन छबि वारों जहां बसें हिमवान लली। देवीसहाय, धन्य आनँद बन जहां जम की कुछ नाहीं चली। मन भावे हमें" ॥

दूसरे ने गाया :—

"छलछांड़ो करो मन मेरी कही, शिव २ सुमिरो सार यही। आनन्द बन जन जानि बसें हैं भव बन्धन छुटि जावें सही। सुरसर सिन्धु समाज बसैं जहां सुद्ध बुद्ध होइ जावै तही। देवी सहाय सकल सुख सम्मुख विश्वनाथ मेरी बहियां गही" ॥

इसी प्रकार भजन गाते हुए लोग गंगा स्नान को जाते हैं ॥

कई पाश्चात्य (अंग्रेज़ी) विद्या विशारद नव युवक, कोट पटलून डाटे, सर पर ओलतीदार टोपी धरे, हाथ में छड़ी और जेब में घड़ी लिये सुबह की ठंढी २ हवा सेवन के निमित्त जगज्जननी जान्हवी के

तट पर मराली चाल से चेहल कदमी कर रहे हैं और वृद्ध ब्राह्मणों के स्तव पाठ को सुन कर उन्हें (foolish-un-civilised) बेवकूफ असभ्य समझ कर उनकी हँसी उड़ा रहे हैं। अस्तु॥

देखते२ सूर्य्य नारायण का रथ कुछ आगे बढ़ा। कुल कमिनियों की टोली की टोली स्नान के लिये दशाश्वमेध घाट पर आने लगी और गंगाजी में उतरने भी लगी। दशाश्वमेध ने अभी अपूर्व्व शोभा धारण की है। औरतें सब जो गंगा की धार में नहा रही हैं सो ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो सैकड़ों कमल अभी गंगाजी में खिले हैं। जो जो नहा चुकीं वे अब ऊपर आकर रंगबिरंगी कपड़े पहिरने लगीं। अब ऐसा जान पड़ता है मानो किसी ने जल के कमलों को उठा कर स्थल पर रख दिया है। कोई देह पोंछ रही है, कोई बाल झाड़ रही है, कोई अपने रूप सँवारनेही में अस्तव्यस्त है। तट पर बैठे हुए सन्ध्या करने वाले लोग आंखे बन्द किये गोमुखी मेंहाथ डाले खटाखट खटाखट माला फेर रहे हैं परन्तु युवतियों के प्रति कुटिल कटाक्ष करने में भी त्रुटि नहीं करते हैं॥

प्रिय वाचक वृन्द! इसी घाट पर एक युवा पुरुष को बैठा आप देख रहे हैं कहिये तो भला यह कौन है?

यद्यपि बहुत तरह के कष्ट और चिन्ता से इस का अब वह सुख भी नहीं है जो कुछ दिन पहिले था तौभी हम इसे बसन्त कुमार कह सकते हैं। सूर्य्य उदय के पहिले से यह यहां आकर बैठा है, अंग प्रत्यंग निश्चल है—पलकें गिरतीही नहीं हैं, एकटक भीड़ की ओर निहार रहा है। यकायक देखने से प्रतिमा का भ्रम होता है॥

बसन्त कुमार मालती की टोह में तमाम से भटक कर आज यहां इसी ख्याल से आया है कदाचित मालती यहां मिल जाय। सैकड़ों आदमी आये और गये पर मालती का कहीं पता नहीं। जितने मनुष्य बसन्त कुमार के बगल से निकल जाते थे उसके उदास चेहरे को देख सबी मर्म्माहत होते थे। सब के एक २ कर चले जाने पर दो स्त्रियां बसन्त के वाम भाग में खड़ी होकर उसे निहार रही हैं॥

ये दोनों बहुमूल्य बनारसी साड़ी पहने और जेवरों से लदी हैं। पाठकों का अधिक समय नष्ट न कर हम बताए देते हैं कि यह वही सुन्दर और सुन्दर हैं जो कुल मर्य्यादा नाश कर काशी में आनन्द लूटने के लिये आई हैं॥

काशी! पहिले तू मुक्ति दायिनी गिनी जाती थी। दूर २ से लोग मुक्ति पाने की इच्छा से आकर तेरा सेवन करते थे पर आजकल तू आनन्द दायिनी होगई है। जिन २ पापियोंका कहीं ठिकाना नहीं लगता, जिन २ कुलटाओ को दिल खोल कर पाप करने का स्थान नहीं मिलता है वे सब काशी में आकर महाअत्याचार करती हैं। जो काशी एक दिन पुण्यक्षेत्र थी वही इन कुल कलंकनियों के कारण पाप क्षेत्र होगई है। अगस्तकुन्डा का बंगाली टोला तो अत्याचार का हेड आफिसही ठहरा, कलि! तुम धन्य और तुम्हारा कौतुक धन्य! जब बसन्त कुमार ने देखा कि दो स्त्रियां एकटक मेरी ओर निहार रही हैं तो उसने अपनी दृष्टि उधर से फेर ली। थोड़ी देर के बाद देखा तो उन दोनों को ज्यों का त्यों पाया। इस

बार वह मन में कुछ विरक्त हुआ और सोचने लगा यह क्या तमाशा है! पहिरावा ओढ़ावा से तो ये कुलवधु और धनी की कन्या मालूम होती हैं फिर यह बेशर्मी क्यों? अपरिचित मनुष्य की ओर यह कटीली कटाक्ष क्यों? यह मुसकुराना कैसा! वाह वाह यह क्या मामला है? क्या काशी की यही चाल है? अगर यही बात है तो मैं यहां अब क्षण भर भी नहीं ठहरूंगा"। फिर सोचा नहीं २ यह मेरा भ्रम है जहां स्वयं विश्वनाथ और अन्नपूर्णा विराजती हैं वहां ऐसा पाप क्यों होने लगा?

उन चालाक औरतों ने जिनका नाम सुन्दर और मुन्दर है या जो बसन्त कुमार को देख कर मुसकुरा रही थीं, इसके मन का भाव जान लिया। दोनों ने मुसकुरा जरा सा घूंघट खोल दिया और जरा आगे बढ़ कर सुन्दर ने वीणाविनिन्दित मधुर स्वर से कहा "क्या आप हम लोगों को भूल गये?"

बसन्त चौंक कर उनकी तरफ देखताही रह गया कुछ देर बाद बोला "नहीं नहीं भला कभी ऐसा हो सकता है?"

सुन्दर०। नहीं भूले हैं तो चलिये मेरे घर। संयोग से आप यहां आगये हैं नहीं तो आप से फिर क्यों भेंट होती। मैं तो आप का एहसान जन्म भर न भूलूंगी॥

बसन्त को तो पहिलेही इन दोनों के चरित्र पर सन्देह हुआ था परन्तु अभी के व्यपार ने, अर्थात् इस तिरछी चितवन, मधुरी मुसकुराहट और नज़ाकत भरी बातों ने, उसके मन में दृढ़ विश्वास करा दिया कि ये अच्छे कुल की होने पर भी कुलटा हैं। इसलिये इनके घर जाना या इनके संग किसी तरह का ज्यादे हेलमेल बढ़ाना बसन्त ने अनुचित जान कर उत्तर दिया "मुझे एक जरूरी काम है इसलिये, आप के घर चलने से लाचार हूं"॥

सुन्दर०। क्या शाम को भी एकाध घन्टे की फुरसत आपको न होगी?

बसन्त०। शाम को तो विश्वनाथ की आरती देखने की इच्छा है॥

सुन्दर ने कहा "आरती तो कोई आठ पौने आठ में होगी आप पांचही बजे कृपा कीजिये तो क्या

हर्ज है? हमारी बुआ ने जब से आपकी तारीफ सुनी है आप को देखने के लिये बड़ी उत्कंठित हैं सो कृपा कर एक वेर आप हमारे घर चलिये तो अच्छा हो। उस रोज जल्दी में कोई बातचीत भी न होसकी। हमारा भी रेल का वक्त होगया था और आप भी जल्दी में थे संयोग से आपकी भेंट होगई है तो अब मैं आपको न छोड़ूंगी जैसे बनेगा वैसे लेही चलूंगी"॥

बसन्त कुमार बड़ा शीलवान था इसलिये दोनों बहिनों के बिनयपूर्ण अनुरोध को टाल न सका; विवस हो उसे जाना स्वीकार करनाही पड़ा। बसन्त ने पूछा "घर का ठिकाना तो मुझे मालूम नहीं मैं कैसे आऊंगा"?

सुन्दर०। अगस्तकुन्डा की सुखदेई बाई के यहां हम दोनों रहती हैं—बंगालीटोला में बुआजी का नाम लेतेही आपको घर का पता तुरत लग जायगा। लेकिन आपको कसम है आइयेगा जरूर भूलियेगा नहीं आप को मेरे सर की कसम है॥

बसन्त कुमार०। "नहीं २ मैं जरूर आऊंगा"

कहता हुआ वहां से चला गया और ये दोनों भी वहां से लम्बी हुईं ॥

रास्ते में जाते मुन्दर ने हँस कर सुन्दर से कहा "जीजी! ब्रह्मा ने मरदों को कैसे बनाया है यह मेरी समझ में नहीं आता है। ये बड़े बेवकूफ होते हैं। हम लोगों की मीठी २ बातों में तुरत आजाते हैं। अब इन्हीं को देखो न तुरत फिसल गये। इस नये शिकार को देख कर बुआजी तो आज बड़ी प्रसन्न होंगी क्यों जीजी"?

सुन्दर०। यह आवे तब तो।

मुन्द०। आवेगा क्यों नहीं। जरूर आवेगा। अब बेचा जी कहां जा सकते हैं अब आगये फन्दे में ॥

इत्यादि बातें कर तीं ये दोनों अपने घर पहुंच गईं ॥

अष्टम् परिच्छेद ।

"शंभु सरासन डिगे न कैसे ।
कामी बचन सती मन जैसे" ॥

आधी रात का समय है। तमाम सन्नाटा है चांदनी खिली हुई है। सुन्दर ठंढी २ हवा की झकोरें आरहे हैं। इस समय जबकि सकल संसार निद्रा देवी की गोद में बैठ कर सुख का अनुभव कर रहा है एक पुरुष, जिसकी उमर करीब ३५।३६ वर्ष की होगी और जिसका बदन चुस्त दुरुस्त और गठीला था—चेहरा खूबसूरत मगर रोबीला था चार पाई पर करवटें बदल रहा है परन्तु निद्रा देवी की कृपा उस पर नहीं होती है। लाचार हो वह उठ बैठा और सोचने लगा "पांच हफ्ते होगये अबभी मैं कुछ कर नसका। देखता हूं यह बड़ी शैतान और जिद्दी है किसी तरह भी पेच में नहीं आती है। गहने की लालच दिखाता हूं कपड़े की लालच दिखाता हूं फुसलाता हूं, डराता हूं, धमकाता हूं तौभी यह शैतान की बच्ची राज़ी नहीं होती। जबसे मैंने इस

का चांद सा मुंह देखा है दिल बेहाथ होगया खाना पीना कुछ नहीं भाता रात दिन उसी का ध्यान बना रहता है। मैंने बहुतसी औरतें देखी हैं लेकिन ऐसी सुन्दर और न ऐसी जिद्दी देखी है। कैसे इसे अपने पंजे में लाऊं कुछ समझ नहीं आता। अच्छा एक दफे फिर उसके पास चल कर देखूं क्या कहती है"॥

इतना सोच वह पुरुष उठ खड़ा हुआ और कपड़े बदलने लगा। इतने में उसकी स्त्री जिसका नाम श्यामा था जाग उठी जो वहांही दूसरी सय्या पर सोई हुई थी। श्यामा ने अपने पति को कपड़े बदलते देख कर पूछा "कहां की तैय्यारी है?"

उसके पतिने जिसका नाम जालिमसिंह था कहा "कहीं की तैय्यारी है तुम्हे पूछने से मतलब?"

श्यामा। जब मैं तुम्हारी स्त्री हूं फिर क्यों नहीं मुझे मतलब?

इस पर जालिमसिंह क्रोधित होकर बोला "तू तो पहले ऐसी नहीं थी—मैं जो चाहता था पहले करता था लेकिन अब तू मेरे कामों में दखल देने लगी।

आजकल तू मेरे सुखमें कांटा सी होगई है मैं जब उस औरत के पास जाता हूं तू भी वहां पहूंचही जाती है और उसे आसा भोरोसा देती है—इसी से आज तक यह काम पूरा नहीं हुआ है। मैं कहे देता हूं फिर ऐसा करोगी तो अच्छा नहीं होगा"।

श्यामा। क्या विधाता ने तुम्हें पत्थरही का बनाया है? जरा भी दया मया तुम्हें छू नहीं गई है? उस बिचारी को इतना तंग करने पर भी तुम्हारा जी नहीं अघाता है? बड़ी २ कोशिश कर के भी तो देख लिया। वह कभी भी तुम्हारी बातों में नहीं आवेगी। सर पटक कर मर जावगी तौभी उसके धर्म्म को न डिगा सकोगी क्योंकि वह सच्ची पतिव्रता है। अब मेरी बात मान कर उस पर जुल्म मत करो उसे छोड़ दो॥

जालिम०। अहा बिचारी कैसा धर्म्म का उपदेश कर रही है सुन कर कलेजा ठंढा हो गया। जुल्म नहीं करेंगे! अरे जुल्म करने के लिये तो जालिमसिंह का जन्मही हुआ है। तू तो सौत के डर से यह सब उपदेश कर रही है क्या मैं नहीं समझता हूं?

श्यामा०। (हँस कर) जो समुद्र में रहता है उसे ठंढ का क्या डर? जब मैं आपकी स्त्री हूं तो सौत के डर से कब तक डरूंगी? उस बिचारी के दुःख से मेरी छाती फटती है इसी से कहती हूं कुछ सौत के डर से नहीं॥

जालिम०। ओः ओः आज कल तो आपकी दया का कुछ ठिकानाही नहीं है मारे दया के बिचारी की छाती टूक २ हुई जाती है अगर दया से तुम्हारी देह गलीही जाती है तो क्यों नहीं उसे समझा बुझा कर राजी कर देती हो? बस एकही दिन में सब दुख दूर हो जायगा अदनी तो बात है।

श्यामा अपने स्वामी के मुंह से इस कठोर बचन को सुन कुछ उत्तर न देसकी आखों से आंसू टपकने लगी, कुछ न कह बिचारी चुप चाप सी रही॥

जालिमसिंह भी बिना कुछ कहे सुने जिस घर में बिचारी राजकुमारी कैद थी उसी घर की ओर चला गया॥

अनाहार, चिन्ता, दुःख से राजकुमारी मालती जो डाकुओं के द्वारा यहां तक पहुंचाई गई थी,

अधमुई सी होगई है। अभी शान्तिदायिनी निद्रा देवी की अनुकम्पा से बिचारी क्षण भर के लिये अपने दुखों को भूलसी गई है। किवाड़ खोलने के समय कुण्डे की खटखटाहट से मालती की नींद टूट गई, आंख खोलतेही उसने देखा सामने एक मनुष्य खड़ा है। जिस मनुष्य के देखने की इच्छा उसे तनिक भी नहीं है, जिस मनुष्य के देखतेही घृणा की उत्पत्ति होती है वही नरपिशाच दस्युपति जालिमसिंह सामने खड़ा है। देखतेही बिचारी के होश उड़गये, छाती हाथ २ भर उछलने लगी, गला सूख गया, माथा घूमने लगा, प्राय मूर्च्छित सी होगई॥

जालिमसिंह ने कहा "प्यारी! मैंने तुम्हें सोते में कष्ट दिया है न जाने कितनी गालियां इस लिये मुझे देती होगी"॥

मालती०। (सम्हल कर) गाली किस समय नहीं देती हूं? जब तक देह में प्राण है गाली दूंगी दूंगी अवश्य दूंगी॥

जालिम०। तुम्हारे लिये मैं प्राण तक देने को

तय्यार हूं और तुम यह जली कटी सुनाती हो क्या तुम्हें यही मुनासिब है ?

मालती० । क्या तुझे यही मुनासिब है कि पराई स्त्री पर बुरी दृष्टि करे ? क्या तुझे यही मुनासिब है कि मेरा धर्म्म नष्ट करे ?

जालिम० । प्यारी ! एक दफे मेरी बात मान लो फिर तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी ॥

मालती० । फिर वही बात ! अरे दुष्ट ! मैं ने तो तुझे साफ २ कह दिया कि तू मुझे लोभ दिखला कर, भय दिखला कर वस में नहीं कर सकता है । मैं अपने प्राण को एक तिनका के बराबर समझती हूं । मुझे अपने प्राण का उतना डर नहीं है जितना कि अपने धर्म्म का । धर्म्मही मेरा प्राण और धर्म्मही मेरी सम्पत्ति है । धर्म्म के लिये मैं प्राण देने को तय्यार हूं ॥

जालिम० । बड़े ताज्जुब की बात है जिस विधाता ने तुम्हें इतना रूप दिया उसने इतनी कम बुद्धि तुम्हें क्यों दी ? तुम्हारी यह नई उमर, यह नई जवानी, सुख भोगने का समय उसमें सधुरा

धर्म्म घुसेड़ रक्खा है। धर्म्म क्या है कुछ नहीं। खाना पीना मजा उड़ाना बस यही जर्म्म है और धर्म्म में क्या सींग पोंछ होती है? अच्छी राह छोड़ बुरी राह से क्यों चलती हो? मान लो मेरा कहना नहीं तो पीछे पछताओगी। तुम्हारे नसीबही में जब दुःख बदा है तो मैं क्या करूंगा?

मालती०। तुम्हें कुछ करना नहीं होगा, बस छपा कीजिये। क्यों बेर बेर आप यहां आकर मुझे तंग करते हैं? जाइये जाइये दूर हूजिये॥

जालिम०। प्यारी! क्या मेरा कहना नहींही मानोगी?

मालती०। कभी नहीं, कभी नहीं। बामन हो कर चांद पकड़ने की आशा करता है। मूर्ख नीच! चल दूर हो। तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होगी॥

जालिमसिंह ने क्रोधपूर्व्वक कहा "जरूर होगी, जरूर होगी, मेरी इच्छा जरूर पूरी होगी। इधर के सूरज चाहे उधर हो जायँ पर मेरी इच्छा टल नहीं सकती है यह हिमालय पर्व्वत के जैसा अटल है। तुम्हें भला इतनी जिद्द क्यों है? तुम जानतीही हो

कि इस वक्त तुम सब तौर से मेरे अख्तियार में हो मैं जो चाहूं कर सकता हूं फिर यह हठ कैसा ? देखो होशियार होजाओ होश में आकर बातें करो॥

मालती०। मूर्ख ! तू मुझे बार २ यह क्या समझाता है अरे मैं तो प्राण देने को मुस्तैदही हूं। इस धमकाने से तो मार डालनाही अच्छा है फिर तो तुझ नीच का मुंह देखने को नहीं मिलेगा॥

जालिम०। तू प्राण देने को मुस्तैद है ? अच्छा वही होता है घबड़ा मत, सम्हल बैठ। इतना कह जालिमसिंह ने म्यान से तलवार निकाल ली जो उसके कमर से लटकती थी और तान कर कहा "मैं बहुत चाहता हूं कि तेरा सर धड़ से अलग करदूं लेकिन तेरी खूबसूरती ऐसा करने से रोकती है लाचार हूं। अच्छा मैं तुझे फिर तीन दिन का समय देता हूं अगर इस बीच में मेरा कहना मान लेगी तो अच्छाही है नहीं तो चौथे दिन जरूरही इस तलवार को तेरा गर्म खून चटाऊंगा या जबर-दस्ती अपनी इच्छा पूर्ण करूंगा"। कहता हुआ जालिमसिंह वहां से चला गया॥

नवम परिच्छेद।

"जोरहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन बिष व्यापे नहीं, लिपटे रहत भुजंग" ॥

समय तीसरे पहर का है। सूर्य्यदेव अस्ताचल जाने की तय्यारी में हैं। नव युवक वा युवती गण अपने अपने रूप को बढ़ाने के लिये अथवा यों कहिये कि ब्रह्मा की कारीगरी में जो कुछ भूल रह गई है उसे सुधारने के लिये गालों पर तेलपनियां चढ़ा रही हैं क्योंकि इन्हें भी हुस्न के बाज़ार में रूप का सौदा बेच कर लोगों को सौदाई बनाना है॥

इस समय हमारा दिलजला बसन्त कुमार बनारस की एक गली में खड़ा २ कुछ सोच रहा है कुछ आगे बढ़ा पर फिर ठठक गया और इधर उधर देखने लगा। इतने में सामने से एक मनुष्य आया जिस से बसन्त ने पूछा "बंगालीटोला किधर है?" उस व्यक्ति के बताने अनुसार बसन्त कुमार जाने लगा। चलते २ उसने सोचा "मैं तो बुरी इच्छा से नहीं जाता हूं मैंने उनकी जान बचाई थी इसलिये

उन लोगों ने कृतज्ञातावश मुझे बुलाया है मैं भी जाता हूं । मेरे जी में तो कोई पाप नहीं है फिर वहां जाने में क्या दोष है? फिर सोचा त्रिया चरित्र को समझना बड़ा कठिन है। मैंने जहां तक उनकी चाल चलन पर बिचार किया है इस से वे स्वतंत्र और चालाक मालूम पड़ती हैं । जान बूझ कर सर्प के बिल में हाथ डालना उचित नहीं पर क्या करूं प्रतिज्ञा भी कर चुका हूं नहीं जाने से झूठा ठहरूं-गा । इसी प्रकार तर्क वितर्क करता वह धीरे २ चला जाता था । अन्त में प्रतिज्ञा भंग होने के डर से उसने जानाही स्थिर किया ॥

बसन्त को सुखदेई बाई के घर के पता लगाने में विषेष कष्ट नहीं हुआ क्योंकि आप उस मुहल्ले में बड़ी प्रसिद्ध थीं । आबालवृद्धवनिता आप से परिचित थीं । बसन्त के पहुंचतेही सुखदेई बाई और रूप गुण की खान सुन्दर और मुन्दर ने अभ्यर्थना की और दुग्ध की फेन के ऐसी सफेद शय्या पर बसन्त को बैठाया और आप भी एक चटाई पर जो शय्या के निकटही बिछी थी बैठ गई मगर यह कह देना हम अच्छा

समझते हैं कि सुन्दर और मुन्दर घूंघट काढ़ कर बैठी थीं ॥

हम पाठकों का समय यह कह कर नष्ट नहीं किया चाहते हैं कि सुखदेई का मकान खूब सजा था, यानी हान्डी कुन्डी लटकती थीं दो शाखा पंच शाखा जगह बजगह दीवारों में लगी थे तस्वीरें थीं आइने थे, मसहरी थी इत्यादि ॥

थोड़ी देर के बाद "विद्यासुन्दर की हीरा मालिन की तरह आपकी रसिका सुखदेई मुसकुराती हुई बोली "देखिये बाबू साहेब! आप के मिलने से मुझे कितना आनन्द हुआ सो मैं कह नहीं सकती हूं। अगर आज आप न आते तो मुझे बड़ा रंज होता। अपनी भतीजियों के (सुन्दर मुन्दर की ओर लक्ष्य कर) मुंह आप के गुन सुन आप को देखने की बड़ी अभिलाषा थी सो आज बाबा विश्वनाथ ने वह अभिलाषा पूर्ण कर दी। आप ने मेरी भतीजियों की जान बचाई है इसलिये हम सब आप के सामने कच्चे सूत में बँधी हैं ॥

बसन्त आत्म प्रशंसा सुनना पसन्द नहीं करता

था, सुखदेई के मुंह से अपनी प्रशंसा सुन सर नीचा कर लिया। यह दशा देख सुखदेई ने उन दोनो की ओर जिनका, ज़िक्र ऊपर होचुका है कुछ इशारा किया और कहा "सुन्दर! तू कैसी है? जिसने तेरी जान बचाई भला उस से लज्जा क्या? जिसने अपनी जान की परवाह न कर उस भारी तूफान में तेरी रक्षा की भला उस से अब लज्जा कैसी?"

मुन्दर०। नहीं बुआजी हमलोग लज्जा नहीं करती हैं वही करते हैं॥

सुन्दर०। बुआजी! हमलोग अगर लज्जा करतीं या इन्हें कोई दूसरा समझतीं तो भला गंगा किनारे इन के साथ कैसे बातचीत करतीं? अपना परम मेली समझ कर तो इन्हें यहां बुलाया है॥

मुन्दर०। यह तो पहिचान कर भी हमलोगों से नहीं बोले॥

बसन्त०। नहीं २ पहिले मैंने पहिचानाही नहीं उस वक्त में एक ख्याल में था इसी से नहीं बोला॥

सुखदेई०। हां, इन लोगों ने भी कहा था कि

आप शायद दसासुमेर घाट पर बैठे कुछ सोच रहे थे। अच्छा घर में तो सब कुशल है न?

दोही घड़ी की जान पहिचान में चिर परिचित की तरह यह प्रश्न करने पर बसन्त कुमार कुछ विस्मित हुआ और बोला "हां घर में सब कुशलही है लेकिन······"॥

सुखदेई०। लेकिन क्या?

बसन्त०। लेकिन यही कि मेरा कुशल नहीं है॥

सुन्दर०। बुआजी! मैंने तो पहिलेही कहदिया था कि बाबूसाहेब को किसी तरह की फिकर जरूर है॥

सुखदेई०। हां हां, इसी से बाबू साहेब का मुंह सूख गया है। सुन्दर! बाबू साहेब को पान लायची दो, सुन्दर! तुम पंखा करो॥

हुक्म की देरी थी सुन्दर चट पान, तम्बाकू की गोकियां, लाइची और फाजिल में इत्र का सुन्दर सुनह-ला बक्स ले आई जिसमें छ: शीशियां इत्र की थीं। और सुन्दर बड़ी कटीली चितवन के साथ पंखा झलने लगी॥

बसन्त ने बहुत कुछ आपत्ति की पर इनकी सुनता कौन है। अन्त में इन्हें सब स्वीकार करनाही पड़ा॥

इन दोनों के पास मनुष्य को फँसाने के लिये

जितने अस्त्र शस्त्र थे एक एक कर सब बसन्त के ऊपर चलाए गये परन्तु सभी निष्फल हुए क्योंकि धर्म्म भीरु बसन्त की दृष्टि बराबर भूमि की ओर थी और न जाने वह किस घोर चिन्ता में मग्न था। कुछ देर योंही बीत जाने पर सुखदेई कृत्रिम दुःख के सहित बोली "बाबू साहिब! अगर कोई हर्ज न हो तो कह डालिये आप का नाम क्या और घर कहां है?"

बसन्त०। मेरा नाम बसन्त कुमारसिंह है और मैं मदनपुर के राजा मदनकुमार सिंह का पुत्र हूं॥

यह सुनतेही तीनों बड़ी प्रसन्न हुईं मानो पारस का टुकड़ाही मिल गया है, सुखदेई ने कहा "बाबू साहिब! यह तो मैं आपकी मुख कान्ति देखतेही समझ गई थी कि यह अवश्यही कोई राजकुमार हैं। अच्छा यह तो कहिये आप राजकुमार हो कर यों अदने आदमी की तरह क्यों फिरते हैं?"

बसन्त०। गोपाल पुर के राजा रणधीरसिंह की लड़की मालती का व्याह मुझसे होने वाला था बल्कि यों कहिये कि सब बात तै पा चुकी थी सिर्फ व्याह की देरी थी लेकिन महाराज के मंत्री दुर्जन-

सिंह ने राज्य के लोभ में आकर—क्योंकि महाराज को सिवा उस लड़की के दूसरी कोई सन्तान नहीं है–महाराज का कान भरना शुरु किया और भीतर २ यह बन्दोबस्त किया कि मालती का ब्याह मेरेही पुत्र (मंत्रि पुत्र) से हो जाय। महाराज भी मंत्री को बहुत चाहते थे वह मंत्री के बात में आगये और मंत्री पुत्रसेही राजकुमारी का ब्याह कर ने के लिये तैयार हो गये। जब यह खबर मालती को लगी उसने मुझे बुलाया और लिखा कि इस समय आपही मेरे धर्म्म के बचाने हारे हैं इत्यादि। मैं वहां गया जहां राजकुमारी ने जाने के लिये लिखा था पर अफसोस! उस दिन ऐसा आंधी पानी आया कि मैं राह भूल गया और भटका फिरा शाम को पहुंचने की बात थी सो दोपहर रात को वहां पहुंचा लेकिन राजकुमारी से भेंट नहीं हुई। एक कागज़ के टुकड़े से जो वह वहां लिख कर छोड़ गई थी मालूम हुआ वह योगिन बन न जाने कहां चली गई। बस मैं भी यही बिचार कर कि जबतक राजकुमारी को ढूंढ़ न निकालूंगा घर नहीं जाउंगा, प्यारी की टोह में देस २

जंगल २ बाहर २ भटक रहा हूं लेकिन हाय! आज तक प्यारी का पता नहीं लगा। हाय! न मालूम उस राजकन्या को मेरी बदौलत कितने कष्ट हुए होंगे ॥

कहते २ बसन्त की आखों से दोचार बूंद आंसू टपक पड़े ॥

सुखदेई०। आपने राजकुमारी को देखा है ?

बसन्त०। राजकुमारी को तो नहीं लेकिन उनकी तस्वीर देखी है ॥

सुखदेई०। तस्वीर का क्या ठिकाना। तस्वीर सच्ची भी होती है और झूठी भी। जो होना था सो होगया अब उसकी चिन्ता क्या! जिस के भाग में जो रहता है वही होता है। राजकुमारी को बन बन भटकनाही बदा था तो आप क्या कीजियेगा। इन दोनों को आपने डूबने से बचाया है इनकी रच्छा की है अब ये आपही की हैं जैसा मुनासिब.........

बसन्त कुमार अब सह्य न कर सका क्रोधित हो उठखड़ा हुआ और "बस बस मैं तुम्हारी गन्दी बात सुना नहीं चाहताहूं" कहता हुआ वहां से नौ दो ग्यारह हुआ और वे तीनों छः पांच करतीही रह गईं ॥

दशम् परिच्छेद ।

"दीवांह वारेके बिगाड़े बिगड़ेगो कहा
जाके रखवारे विष्णु चार भुजावारे हैं"।

दस्युपति जालिमसिंह के शयनगृह से निकल कर मालती के निकट जाने पर श्यामा अनेक चण लौं तकिये में मुंह छिपा कर रोती रही यहां तक रोई कि आंसू से तकिया बिल्कुल भींग गया। फिर उसने सोने की चेष्टा की परन्तु नींद निगोड़ी न आई। लाचार हो पड़ी २ सोचने लगी "मालती के पास चलूं" पर जुल्मी जालिमसिंह के जुल्म को याद कर साहस नहीं हुआ। इतने में इसे ध्यान उठा कि कैसे इस बिचारी को यहां से छोड़ाऊं पहरा चौकी का ऐसा बन्दोबस्त है कि छिप कर एक चींटी का भी आना जाना मुश्किलही नहीं वरन् असंभव है फिर मैं क्या करूं कैसे उसे छोड़ाऊं? अगर उस सुरंग की चाभी जो कैदखाने के दक्खिन तरफ है मिल जाय तो निश्चय मैं उसे बचा सकती हूं पर यह होना असम्भव है क्योंकि आज कल वह

चाभी को रात दिन अपनेही पास रखते हैं और मांगने से भी वह मुझे नहीं देंगे क्योंकि वह जानते हैं कि मैं उसे भगादूंगी। चाहे जो हो, मेरी जान जाय या रहे मैं उसको रक्षा जरूर करूंगी। यह कह वह उठ खड़ी हुई और कारागार की ओर जाने लगी इतने में उसकी दृष्टि एक लोहे की लम्बी चाभी पर जा पड़ी जो वहांही सामने पड़ी थी। देखतेही वह बड़ी प्रसन्न हुई और बोल उठी "बेशक यह वही चाभी है जिसके लिये मैं इतनी परीशान थी परमात्मा ने बड़ी कृपा की जो यह चाभी अनायासही मिल गई। अब कुछ परवाह नहीं जरूर उस बिचारी की जान बच जायगी जो महीनों से इस कैदखाने में सड़ रही है। मालूम होता है क्रोध और जल्दी के सबब यह चाभी उन से गिर पड़ी है चलो अच्छाही हुआ"। इतना कह उसने चाभी को उठा लिया और आंखों से लगाया॥

श्यामा ने एक पत्र लिखा और चाभी को उसी में लपेट कर कारागार की ओर प्रस्थान किया। उसने वहां जहां मालती कैद थी पहुंच कर एक

छोटी सी खिड़की से जो हवा के निकास के लिये बनी थी उझक कर देखा कि मालती आंखों से गर्म २ आंसू बहा रही है, देखतेही श्यामा का जी पिघल उठा। वह तुरत उस कागज़ के टुकड़े को जिसमें चाभी लपेटी थी मालती के सामने फेंक कर लौट गई॥

मालती बिचारी बैठी २ रो रही थी अकस्मात् उसके सामने एक लपेटा हुआ कागज़ भद्द से आ गिरा, वह इधर उधर बिस्मित हो देखने लगी लेकिन किसी को न पाया। उसने कौतूहल से कागज़ को लेकर खोला तो एक चाभी निकली और एक चिठ्ठी। अब तो वह और भी घबड़ानी और सोचने लगी क्या बिधाता ने मेरे निमित्त यह सब चीजें भेजी हैं। सविस्मय उसने पत्र को पढ़ा उसमें यह लिखा था:—

"अगर प्रान बचाना है तो इन कामों को झट पट करो। इस चाभी को लेकर दक्खिन तरफ जाओ दीवाल को जहां "जालिम" लिखा मिले कोड़ना। कोड़ने से ताला के जैसा एक छेद मिलेगा उसमें चाभी डाल कर पांच दफे घुमाना। घुमाने के बाद चटाखे की आवाज होगी और दर्वाजा खुल जायगा।

दर्वाजा खुलने बाद एक आदमी के जाने लायक रास्ता मिलेगा। दो चार कदम आगे जाने के बाद नीचे उतरने के लिये सीढ़ियां दिखलाई पड़ेंगी। डरना मत, नीचे उतर जाना। नीचे उतरने के बाद एक बड़ा लम्बा चौड़ा अन्धियारा दालान मिलेगा। सीधे पूरब की ओर कदम बढ़ाना जब दीवाल मिल जाय तो दीवाल के सहारे बाएं हाथ मुड़ना तो वहां कोने में एक सुरंग का द्वार मिलेगा जिसका दूसरा छोर एक सब्ज़ मैदान में है। बस उसी सुरंग के द्वारा मैदान में पहुंच कर जिधर तुम्हारा मन हो घूम जाना। जाव, जाव, भागो देरी मत करो। बाहर निकल कर चिट्ठी को फाड़ कर फेंक देना और चाभी को भी। भागो, जल्दी भागो। मैंने वादा किया था इसी लिये यह उपाय बतलाया। इति। तुम्हारी—श्यामा"॥

मालती पत्र पढ़ कर बड़ी प्रसन्न हुई और बोली "अहा! डाकुओं के यहां भी ऐसी २ लक्ष्मी रहती हैं। श्यामा! तुम धन्य हो! न जाने किस पाप से तुम्हें ऐसे पति मिले हैं हर इच्छा!" इतना कह मालती चाभी को लेकर दक्खिन की ओर गई और

बड़े ध्यान से दीवाल को देखने लगी। एक स्थान में "जालिम" लिखा हुआ देखा तुरत उसने चाभो से उस स्थान को जहां "जालिम" लिखा था कोड़ना आरम्भ किया। कोड़ते २ वह छेद निकल आया जिसके बारे में श्यामा ने लिखा था। मालती ने उसमें चाभी डाल कर पांच दफे घुमाया। घुमातेही एक आवाज हुई और दर्वाजा खुल गया और वह उसमें घुस गई। दो चार डेग आगे बढ़ने पर सीढ़ियां मिलीं वह नीचे उतर कर दालान के पूरब लपकती चली गई जब दीवाल के पास पहुंची तो वह बांयें हाथ मुड़ी थोड़ी दूर जाने बाद उस सुरंग का द्वार मिला जो चिट्ठी में लिखा था। मालती सुरंग में घुस गई और टटोलते २ अन्धेरे में वह दो तीन कोस के लगभग चली गई। जाते २ वह एक मैदान में पहुंची जो बड़ा लम्बा चौड़ा और रमणीक था। जब मैदान की ठंढी २ हवा उसकी देह में लगी तो उसका मन ठिकाने हुआ और उसने अपने को तब निरापद जान परमेश्वर को धन्यवाद दिया। चिट्ठी को फाड़ कर और ताली को वहांही फेंक एक ओर का रास्ता लिया॥

एकादश परिच्छेद।

"जो जस करै सो तस फल चाखा"।

प्रातःकाल का समय है। सूर्य्य उदय हो गया है तथापि बंगालीटोला की सँकरी गली में अभी पूरा अन्धकारही है। मालूम होता है इन गन्दी गलियों के भीतर जाने में प्रकाश को घृण होती है इसी से आठ बज गये तथापि वहां अन्धकारही है॥

इस समय सुखदेई बाई अपने आंगन में बैठी चिल्ला २ कर रो रही है "हाय! न जाने कौन मेरी भतीजी का गला काट गया और सरवस ले गया हाय! हम लुट गये! हाय! हम मारे गये! अरे लोगो दौड़ो! जरा कोतवाली में तो कोई खबर दे आवे। हाय बड़ा जुलुम हुआ, हाय हमारी सब कमाई चली गई। हाय अब क्या करें किस मुद्दई ने हमारा सत्यानास किया? अरे सुन्दर उठ देख बड़ा गजब हो गया।" सुन्दर भी जो सुख की नींद ले रही थी सुखदेई का आर्तनाद सुन चौंक उठी और आंखें मलते मलते कहने लगी बुआजी बुआजी!

हुआ क्या ? क्यों रोती हो ?" सुखदेई ने कहा "अरे हुआ क्या सत्यानास हुआ ! जन्म भर की कमाई गई और सुन्दर भी चली गई।" सुन्दर बोली "जीजी कहां गईं जो इतना रो रही हो ?" सुखदेई ने जवाब दिया "कहां गईं सो उस पूरब वाले कमरे में जाकर देख" ॥

सुन्दर तुरत उस कमरे में गई, जाकर देखा कि सुन्दर के कलेजे में एक खूब तेज कटार चुभा हुआ है। लोहू का फौआरा छूट रहा है। गहने और रुपये वाले सन्दूक टूटे पड़े हुए हैं। इस दृश्य को सुन्दर सहन न कर सकी "हाय जीजी !" कह कर बेहोश होगई ॥

इधर सुखदेई की रुलाई सुन टोले मुहल्ले वाले एक २ कर एकत्र होने लगे। देखते २ खचाखच भीड़ होगई। उस भीड़ में से एक मनुष्य दौड़ कर यह खबर कोतवाली में दे आया। फिर क्या था ? दलबल समेत पुलिस रानी आ पहूंची कोतवाल साहेब प्रभृति ने सुखदेई के सुखमय भवन में प्रवेश किया। भीड़ भड़क्का हटा दी गई कोतवाल साहेब

ने सुखदेई से जो फूट २ कर रो रही थी पूछा "इस घर का मालिक कौन है ?"

सुख० । मैं ॥

कोत० । क्या कोई मर्द यहां नहीं रहता है ?

सुख० । नहीं ॥

कोत० । घर में कितने आदमी रहते हैं ?

सुख० । तीन आदमी, मैं और दो मेरी भतीजियां॥

कोत० । जिसका खून हुआ वह तुम्हारी कौन है ?

सुख० । मेरी बड़ी भतीजी ॥

कोत० । लाश कहां है ?

"आइये मैं बतलाती हूं" कहती हुई सुखदेई-कोतवाल साहेब को जिस घर मे लाश पड़ी थी ले गई। कोतवाल साहेब ने कमरे में प्रवेश किया और देखा एक युवा स्त्री जिसके कलेजे में काटार चुभा हुआ है पड़ी है, आंखें बन्द हैं। पाठकगण ! जो नैन एक दिन भुवनविजयी थे, घाव करने में तीच्ण तरवार को भी मांत करते थे और जिनको कमल से उपमा दी जाती थी आज वही युगल नयन बन्द हैं। वह सुन्दर मुखचन्द्र जो एक दिन

अनुपम अद्वितीय गिना जाता था आज कान्ति हीन है। जिस मुख को देखने के लिये लोग तरसते थे जान तक देने को उद्यत हो जाते थे आज वही मुख सामने पड़ा है लेकिन देखने की इच्छा नहीं होती है।

पाठकगण! मनुष्य के शरीर सौन्दर्य्य की चरम-सीमा यही है। हमारी नश्वरदेह क्षणभंगुर शरीर, अस्थि मांस रुधिरपूर्ण आकार जिसके घमण्ड में हम फूले नहीं समाते हैं एक न एक दिन अवश्यही नाश होयेगा। फिर इसके लिये हाय हाय करना वा अभिमान करना मूर्खता के सिवा और क्या कहा जा सकता है? यथार्थ में ज्ञानी वही हैं जो इस संसार को असार और अनित्य समझते हैं, अस्तु॥

लाश को खूब देख भाल कर कोतवाल ने यह सवाल फिलहाल सुखदेई पर डालही तो दिया "तुम्हारे यहां कभी कोई मर्दवर्द आता जाता है?"

सुख०। कभी नहीं॥

कोत०। तुमसे या इस से (लाश की ओर) कभी किसी से लड़ाई भी हुई है?

सुख०। कभी नहीं॥

कोतवाल ने फिर दाई से पूछा जो सुखदेई के यहां काम किया करती थी "ठीक २ कहना भूठ मत बोलना, तेरा नाम क्या है?"

दाई०। चमेली॥

कोत०। इस घर में कभी कोई मर्दवर्द आता है या नहीं?

चमे०। हम ठीकै कहोथे दोहाई सरकार की, बहूजी बहुत मरद की नाहीं आवै देथीं॥

कोत०। बहुत नहीं दो चार तो रोज आते हैं?

चमे०। दू चार का आठ दस तो रोजै आवत हैं। कल सांभी तो ऐक जने आये रहे॥

कोत०। उसको तू पहिचानती है? उसका नाम क्या था?

चमे०। हम भला ई सब का जानी—दोहाई सरकार की हम गरीबिन हई॥

कोतवाल ने दाई से और कुछ न पूछ कर सुखदेई से कहा "सुना! दाई क्या कहती है? एक दम भूठ इजहार!"

सुख०। दाई निगोड़ी तो भुट्ठी है लुची है॥

कोत०। तुम्हारा नाम क्या है ?

सुख०। सुखदेई॥

कोत०। (चौंक कर) सुखदेई ?

सुख०। हां सुखदेई॥

कोत०। इसका (लाश) और उसका (सुन्दर की ओर उंगली कर जो वहांही बैठो रोती थी) क्या नाम है और घर कहां है ?

सुख०। जो मारी गई है उसका नाम सुन्दर और इसका सुन्दर है। घर मुङ्गेर ज़िला है॥

कोत०। (प्रसन्न होकर) मुङ्गेर ज़िला की सुन्दर सुन्दर यही हैं जो खून के मुकद्दमा में रूपोश हैं ? बहुत दिनों से इनके गिरफ़्तारी का परवाना मेरे पास है लेकिन पता नहीं लगता था आज बड़ी खुशी की बात है कि घर बैठे इन दोनों का पता लग गया॥

कोतवाल ने इतना कह सुखदेई और सुन्दर को गिरफ़ार करके मुंगेर भेज दिया। सेसन में सुन्दर के ऊपर पतिघात का अपराध सिद्ध हुआ अतएव सुन्दर को काला पानी हुआ और सुखदेई को १४

वर्ष सपरिश्रम कारागार बास की आज्ञा हुई। सुख-देई पर स्त्री फुसला कर व्यभिचारिणि बनाने का अपराध लगाया गया था। बालविधवा सुखदेई ने जब तक युवती थी खूब मजा उड़ाया और धन उपार्जन किया था जब अवस्था गिर गई तो अच्छे २ कुल की औरतों को फुसला कर उन्हें वेश्या बनाती और धन पैदा करती थी॥

पुलिस ने बहुत छानबीन की लेकिन सुन्दर के घातक का पता न लगा॥

द्वादश परिच्छेद ।

"जापर जाकर सत्य सनेहू ।
मिलै सो ताहि न कछु सन्देहू" ॥

बिष्णु पुर के ऊंचे २ पर्व्वतों ने अभी अपूर्व्व शोभा धारण किया है मानों उस जगत्पिता की अभ्यर्थना के लिये श्रेणीबद्ध हो खड़े हैं । पर्व्वत के सामने मगर पूर्व्व की ओर एक बड़ा लम्बा चौड़ा मैदान है जिसमें सुन्दर २ मगर छोटे २ साखू के पेड़ क्रमसे ऐसे लगे हैं मानों अंग्रेजी पल्टन परेड के लिये तैयार है । साल वृक्ष के अलावे प्याल ताल तमाल भी अपनी २ छटा अलगही दिखा रहे हैं । छोटे २ बैर के पेड़ जगह बजगह लगे हुए हैं । सामने एक साफ पानी का झरना बह रहा है । सूर्य्य अस्त हुआही चाहता है । डूबते हुए सूर्य्य की सुनहली किरणें इन बन की शोभा को दूनी कर रही हैं । परन्तु यह शोभा बहुत देर तक ठहरने न पाई क्योंकि एक काले बादल के टुकड़े ने आकर इस डूबनेवाले सुर्य्य को तोप लिया । क्रमशः अन्धकार बढ़ने लगा ॥

इस समय एक सुन्दर योगिन आंखें बन्द किये पर्व्वत की एक गुफा में बैठी है। इसको देखने से मन में यह भाव उठता है मानो गौरी महादेव के लिये तपश्चर्य्या कर रही है। थोड़ी देर बाद जब युवती योगिन का ध्यान भंग हुआ तो उसने बीणा बिनिन्दित कण्ठ से गाया:—

"अब शिव पार करो मेरी नैया। औघट घाट अगाध महाजल बल्ली लगे न खिवैया, बारि बरोबर बारि रह्यो है तापर अति पुरवैया, थरथराय कम्पत हिय मेरो शिवको देत दुहैया। देबी सहाय प्रभात पुकारत सिव पितु गिरिजा मैया। अब शिव पार करो मेरी नैया" ॥

अब रात हो चुकी है। आकाश भी घटा से घिर गया। दो चार बून्दें भी पड़ने लगीं पर हवा ऐसे जोर से चली कि सब घटा कोछटा हटादी गई। असंख्य तारों के सहित चन्द्रदेव निकल आये॥

इस समय एक योगी जिसके चेहरे से उदासी और निराश झलकती थी परन्तु तरुणाई ने उसका संग नहीं छोड़ा था, बिष्णुपुर के पर्वत के बगल वाली सड़क पर जो मलेपुर से सीधे खड्गपुर को चलीगई

है, जा रहा है। वह धीरे २ चला जाता है और मन में सोचता भी जाता है "हाय! अब कहां जाऊं? दूनियां छानडाली पर प्यारी का पता न लगा! न मालूम उस बिचारी की क्या दशा हुई होगी? अब घर जाकर क्या करूंगा इसी पहाड़ पर धूनी लगा कर प्यारी के नामकी माला फेरूंगा। इतने में "अब शिव पार करी" इत्यादि की तान इसके कान में पड़ी। वह चौकन्ना होकर इधर उधर देखने लगा पर किसी को न पाया। पुन: कान लगा कर ध्यान से सुनने लगा फिर भी वही तान सुन पड़ी। न मालूम इस गाने में क्या जादू सा असर था कि सुनतेही वह योगी मुग्ध सा होगया। उसने कहा "इस समय यह अमृत की बरषा कौन कर रहा है? क्या कोई अप्सरा वा मानवी है? आवाज तो औरत सी मालूम होती है अब जो हो मैं तो इसका दर्शन जरूर करूंगा। योगी आवाज की सीध बांध कर चन्द्र-देव के प्रकाश के सहारे ऊपर चढ़नेलगा। यथा समय में वह उस कन्दरा के पास पहुंच गया जहां से गाने की आवाज़ आरही थी॥

योगी ने जाकर उसी योगिनी को देखा जिसके विषयमें हम ऊपर लिख आये हैं। योगी उसको देख कर मन में बोला "अहा क्या रूप है! क्या तेज है, क्याही सुन्दर सलोना चेहरा है मानों साक्षात् देवी! न जाने क्यों मेरा मन इस की तरफ खिचा जाता है! अहाहा क्याही सुन्दर मुख है! अब जरा इन से पूछूं तो सही कि यह कौन हैं?" जब योगिन ने देखा कि एक तरुण योगी उसके सामने चुप चाप खड़ा है तो वह भी चक्कर में पड़ गई, सोचने लगी "यह कौन! क्या कोई देवता हमपर प्रसन्न होकर बर देने के लिये योगि रूप से आये हैं? अहा! कैसा कान्तिवान चेहरा है"! योगीनी ने हाथ जोड़ कर कहा "नाथ! आप कौन हैं जो इस दासी पर कृपा कर दर्शन दिया?"

योगी कुछ बोलनेही को था कि इतने में एक दूसरी योगिन आ पहूंची और पहली योगिन को छाती में लगा कर बोली "सखी मालती! तुम कहां–" आगे बोल न सकी गला भर आया आखों से प्रेमाश्रु टपने लगा। मालती भी "प्यारी चम्पा! तुम कहां?"

कह कर रोने लगी। हमारा योगी यह सब तमाशा देख भौचकसा रहगया बोलने को चाहा पर बोल न सका, आगे बढ़ना चाहा लेकिन बढ़ न सका जहां का तहां पत्थर के जैसा खड़ाही रह गया। बड़ी २ कठिनाई से इतना मुंह से निकाला "प्यारी मालती तुम्हारी यह दशा!" अब मालती की दृष्टि इस योगी पर पड़ी वह बड़े गौर से इसके तरफ देखने लगी। चम्पा ने कहा "देखती क्या है? जिनके लिये इतना कान्ड रचा गया यह वही महात्मा हैं।" अब मालती के आनन्द का क्या ठिकाना था मारे आनन्द के "प्यारे बसन्त कु......" कह बेहोश हो गई। बसन्त कुमार और चम्पा ने कपड़े से हवा करना शुरु किया और आंखों पर पानी दिया। जब मालती होश में आई बसन्त के गले गले मिली। अब तीनों के आनन्द का वर्णन हम अपनी लेखनी द्वारा नहीं कर सकते हैं। विज्ञपाठकगण जिन्हें ऐसा मौका प्राप्त हुआ हो स्वयं अनुभव करलें॥

इन तीनों ने रात भर उसी कन्दरा में अपनी २ कहानी कह कर रात बिताई। चम्पा ने यों अपना

हाल कहा "जब मैं तुम से बिदा हो राजकुमार को देखने के लिये चली गई थी तो मैं देखती २ बहुत दूर निकल गई। इतने में पानी बरसने लगा मैं लौटी लेकिन राह में सिपाहियों से भेंट होगई जो हमलोगों की टोह मे आये थे। उन लोगों ने मुझ से पूछा मैंने साफ जवाब नहीं दिया। तब वे लोग मुझे महाराज के पास लेगये लेकिन वहां भी मैंने कुछ नहीं बताया बस क्या था, मंत्री के कहने मुताबिक मैं कैद को गई लेकिन तुम्हारे बिना मुझे चैन कहां! मैं चालाकी कर कैदखाने से निकल भागी और तुमको ढूंढ़ने के लिये यह भेस बनाया। तमाम घूम फिरी लेकिन तुम्हारा पता कहीं नहीं चला। आज शाम को जब मैं इधर से जा रही थी तुम्हारे इस भजन को "अवशिव" सुना। मुझे विश्वास हो गया कि तुम यहांही हो क्योंकि तुम्हारी आवाज़ मैंने पहिचानी और यह भजन तो हमलोगों का पुराना हई है। जब यहां पहुंची तो इन्हें (बसन्त) देखा इन्हें भी मैं पहिचान गई क्योंकि जब तुम्हारा ब्याह पक्का हुआ था तब मैं स्वयं जाकर इन्हेंदेख

आई थी तुम्हें ये बात मालूम नहीं हैं। इत्यादि" ॥

प्रात:काल तीनों उठे और मदनपुर गये। वहां लोगों को जो हर्ष प्राप्त हुआ उसका लिखना हमारी शक्ति के बाहर है। बड़े धूमधाम से बसन्त का व्याह मालती से हुआ। गोपालपुर और मदनपुर की राजगद्दी पर बसन्त कुमार बैठाये गये। दोनों राजा विरक्त हो जंगल में तप करने चले गये। बसन्त और मालती सुख से दिन बिताने लगी ॥

मंत्री दुर्जनसिंह सपरिवार राज्य से निकाल दिये गये ॥

॥ इति ॥